विषय-सूची

वक्तव्य

यद्यपि हिन्दी का प्रायः समस्त प्राचीन साहित्य व्रजभाषा में है किन्तु यह आश्चर्य तथा लज्जा की बात है कि इस प्रमुख साहित्यिक बोली का कोई भी व्याकरण हिन्दी में अब तक नहीं लिखा गया है। लल्लूलाल ने व्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा-स्वरूप एक छोटी सी पुस्तक अंगरेज़ी में लिखी थी जो १८११ ईसवी में फोर्टविलियम कालेज कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तिका भी अब दुष्प्राप्य है। केलाग के खड़ीबोली हिन्दी व्याकरण में तुलना के लिये व्रजभाषा आदि हिन्दी की अन्य प्रमुख बोलियों के रूप भी जहाँ तहाँ दिखला दिये गये हैं किन्तु यह बोलियों की सामग्री अत्यन्त सूक्ष्म है। ग्रियर्सन की 'लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया' जिल्द ६ भाग १ में व्रजभाषा के वर्णन तथा उदाहरणों के साथ साथ एक दो पृष्ठों में आधुनिक व्रजभाषा के व्याकरण का ढाँचा भी दिया गया है। किन्तु सर्वे की यह समस्त सामग्री व्रजभाषा के आधुनिक रूप से संबंध रखती है, प्राचीन साहित्यिक व्रजभाषा पर 'सर्वे' की सामग्री से कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। सुनते हैं कि रत्नाकर जी ने व्रजभाषा का एक संक्षिप्त व्याकरण प्रकाशित

किया था किन्तु यह ग्रंथ भी अब उपलब्ध नहीं है। गतवर्ष कलकत्ते से मिर्ज़ा खाँ कृत एक प्राचीन व्रजभाषा व्याकरण अँग्रेज़ी में प्रकाशित हुआ है किन्तु इसका यह नाम भ्रमात्मक है क्योंकि प्राचीन व्रजभाषा का ठीक ज्ञान कराने में यह ग्रन्थ बिलकुल भी सहायक नहीं होता। व्रजभाषा के व्याकरण के अध्ययन की ऐसी परिस्थिति में यह प्रयास बहुत पूर्ण न होते हुये भी अनावश्यक तो नहीं समझा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में साहित्यिक व्रजभाषा का व्याकरण प्रमुख रचनाओं के आधार पर ही देने का यत्न किया गया है। व्रजभाषा का प्रकाशित साहित्य कुछ कम नहीं है और यदि अप्रकाशित ग्रंथों को भी सम्मिलित कर लिया जावे तब तो व्रजभाषा में लिखे गये ग्रंथों की संख्या हज़ारों तक पहुँच जावेगी। इस समस्त सामग्री की पूरी छानबीन करके रूपों को इकट्ठा करना एक व्यक्ति के लिये एक जीवन में भी संभव नहीं प्रतीत होता, अतः इस पुस्तक में व्यावहारिक ढंग से चला गया है। व्रजभाषा का अधिकांश साहित्य १६वीं १७वीं तथा १८वीं शताब्दी में लिखा गया है। इन तीनों शताब्दियों के लगभग छः छः प्रमुख कवियों के मुख्य ग्रंथों को लेकर सामग्री इकट्ठी की गई है और इन्हीं कवियों के ग्रंथों से उदाहरण दिये गये हैं। इन कवियों तथा इनकी रचनाओं का विस्तृत उल्लेख पुस्तकों के नामों के संक्षिप्त रूपों के साथ कर दिया गया है। आधुनिक काल के प्रमुख व्रजभाषा कवि तथा आचार्य श्री जगन्नाथदास रत्नाकर जी के अनुसार व्रजभाषा का

एक आदर्श व्याकरण विहारी तथा घनानंद की रचनाओं के आधार पर बनाया जा सकता है। प्रस्तुत व्याकरण में इन दो कवियों की रचनाओं के अतिरिक्त सूरदास, हितहरिवंश, नंददास, नरोत्तमदास, तुलसीदास, नाभादास, गोकुलनाथ, केशवदास, रसखान, सेनापति, मतिराम, भूषण, गोरेलाल, देवदत्त, भिखारीदास, पद्माकर तथा लल्लूलाल की रचनाएँ भी सम्मिलित की गई हैं। विस्तृत उदाहरण इस बात के प्रमाण स्वरूप हैं कि यथाशक्ति इस प्रचुर सामग्री का पूर्ण उपयोग करने का उद्योग किया गया है। २०वीं शताब्दी विक्रमी के कवियों की रचनाओं को प्राचीन साहित्यिक ब्रजभाषा के व्याकरण के लिये आधारभूत मानना उचित न समझ कर लल्लूलाल के बाद के कवियों की रचनाओं का उपयोग इस पुस्तक में जानबूझ कर नहीं किया गया है।

इस कार्य को पूर्ण करने में सबसे बड़ी कठिनाई प्राचीन ग्रंथों के ठीक संपादित संस्करण न होने के कारण पड़ी। रत्नाकर द्वारा संपादित सतसई को छोड़कर ब्रजभाषा का कदाचित् कोई भी दूसरा ग्रंथ वैज्ञानिक ढंग से अभी तक संपादित होकर प्रकाशित नहीं हुआ है। समस्त उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर उनके प्रत्येक संदिग्ध शब्द का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक ढंग से अध्ययन करके यह पाठ स्थिर करना जो ग्रंथ के लेखक ने वास्तव में लिखा होगा वैज्ञानिक संपादन कहलाता है। अपने साहित्य के प्राचीन ग्रंथों के वर्तमान संस्करण इस ढंग से 'संपादित' किये जाने के स्थान पर प्रायः मनमाने

ढंग से 'संशोधित' कर दिये गये हैं। इस कारण ब्रजभाषा की छपी हुई पुस्तकों की लिपि-शैली अत्यन्त अस्थिर तथा संदिग्ध है। उच्चारण की विभिन्नता के अतिरिक्त लिपि-शैली के संबंध में ध्यान न देने के कारण ब्रजभाषा के शब्दों में बहुत अधिक अनेक-रूपता मिलती है। भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों तथा आधुनिक ब्रजभाषा में प्रचलित शब्दों के रूपों की सहायता लेकर शब्दों के रूप स्थिर करने के संबंध में इस व्याकरण में विशेष ध्यान दिया गया है यद्यपि छपी हुई वर्तमान पुस्तकों में प्रयुक्त समस्त भिन्न भिन्न रूप भी ज्यों के त्यों दे दिये गये हैं। आशा है भविष्य में ब्रजभाषा ग्रंथों के संपादन में इस पुस्तक से भावी संपादकों को विशेष सहायता मिल सकेगी।

ब्रजभाषा व्याकरण लिखने का संकल्प मैंने संवत् १९७९ में किया था। धीरे धीरे सामग्री जुटाते हुए यह संकल्प अब पूरा हो सका है। आशा है कि ब्रजभाषा के प्रेमी, विद्यार्थी, तथा विद्वान् इस पुस्तक का स्वागत करेंगे।

प्रयाग,
विजयदशमी, १९९३

धीरेन्द्र वर्मा

पुस्तकों के नामों के संक्षिप्त रूप

कवित्त० कवित्तरत्नाकर—सेनापति, साहित्य समालोचक, अप्रैल १९२५ ई०; अंक द्वितीय तरंग की छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

कविता० कवितावली—तुलसीदास, तुलसीग्रंथावली भाग २, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, १९८० वि० ; अंक कांड तथा छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

काव्य० काव्य निर्णय—भिखारीदास, भारतजीवन प्रेस काशी १८९९ ई० ; अंक पृष्ठ तथा छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

गीता० गीतावली—तुलसीदास, तुलसी ग्रंथावली भाग २, १९८० वि०, अंक कांड तथा पद-संख्या के द्योतक हैं।

गु० हि० व्या० हिन्दी व्याकरण—कामता प्रसाद गुरु।

छत्र० छत्रप्रकाश—गोरेलाल, नागरी प्रचारिणी सभा, १९१६ ई० ; अंक पृष्ठ तथा पंक्ति-संख्या के द्योतक हैं।

जगत्० जगत् विनोद—पद्माकर, भारतजीवन प्रेस काशी, १९०१ ई०; अंक पृष्ठ तथा छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

ना० प्र० प० नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

भक्त० भक्तमाल—नाभादास, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १९१३ ई०; अंक छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

भाव० भाव विलास—देवदत्त, भारतजीवन प्रेस काशी, १८९२ ई०; अंक विलास तथा छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

रस० रसराज—मतिराम, मतिराम ग्रंथावली, गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय लखनऊ, १९८३ वि० ; अंक छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

रसखा० रसखान पदावली, हिन्दी प्रेस प्रयाग ; अंक छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

राज० राजनीति—लल्लूलाल, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १८७५ ई० ; अंक, पृष्ठ तथा पंक्ति-संख्या के द्योतक हैं।

राम० रामचन्द्रिका—केशवदास, केशवकौमुदी, रामनारायण लाल प्रयाग, १९८६ वि०, अंक प्रकाश तथा छन्द-संख्या के द्योतक हैं। एक अंक प्रथम प्रकाश की छन्द-संख्या का द्योतक है।

रास० रासपंचाध्यायी—नंददास, भारतमित्र प्रेस कलकत्ता, १९०४ ई० ; अंक अध्याय तथा छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

लि० स० इं० लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया—ग्रियर्सन।

वार्त्ता० चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता—गोकुलनाथ, अष्टछाप, रामनारायण लाल प्रयाग, १९२९ ई०, अंक, पृष्ठ तथा पंक्ति-संख्या के द्योतक हैं।

शिव० शिवराजभूषण—भूषण, भूषण ग्रंथावली, रामनारायण लाल प्रयाग, १९३० ई० ; अंक छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

सत० सतसई—बिहारीलाल, बिहारी-रत्नाकर, गंगापुस्तक-माला कार्यालय लखनऊ, १९८३ वि० ; अंक दोहों की संख्या के द्योतक हैं।

सुजा० सुजान सागर—घनानंद, लाला सीताराम द्वारा संपादित 'सेलेक्शन्स फ़्राम हिन्दी लिटरेचर' जिल्द ६ भाग २, विश्वविद्यालय कलकत्ता, १९२६ ई० ; अंक छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

सुदा० सुदामा चरित्र—नरोत्तमदास, साहित्यसेवक कार्यालय काशी, १९८४ वि० ; अंक छन्द-संख्या के द्योतक हैं।

सूर० सूरसागर—सूरदास, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ; मा० य० वि० क्रम से माखनचोरी (पृ० २७७ इ०), यमुना स्नान (पृ० ४३२ इ०), तथा विनय पत्रिका (पृ० ६०२ इ०) के और अंक इन अंशों की पद-संख्या के द्योतक हैं।

हित० हित चौरासी और सिद्धान्त—हित हरिवंश, व्रजमाधुरी-सार ; अंक पद-संख्या के द्योतक हैं।

नए लिपि-चिह्न

ऎ	ॆ	ह्रस्व ए
ऍ	ॅ	अर्द्धविवृत् अग्र ह्रस्वस्वर
ऒ	ॊ	ह्रस्व ओ
ऑ	ॉ	अर्द्धविवृत् पश्च ह्रस्वस्वर

भूमिका

व्रजभाषा

नाम

'व्रज' का संस्कृत तत्सम रूप 'व्रज' है। यह शब्द संस्कृत धातु 'व्रज्' 'जाना' से बना है। 'व्रज' का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता[1] में मिलता है किन्तु वहाँ यह शब्द ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु समूह के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। संहिताओं तथा इतिहास ग्रंथ रामायण महाभारत तक में यह शब्द देशवाचक नहीं हो पाया था।

हरिवंशादि पौराणिक साहित्य[2] में भी इस शब्द का प्रयोग मथुरा के निकटस्थ नंद के व्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष के अर्थ में ही

१—जैसे, ऋग्वेद मं० २, सू० ३८, म० ८; मं० ५, सू० ३५, मं० ४; मं० १०, सू० ४, मं० २, इत्यादि।

२—जैसे, यद् व्रजस्थानमधिकम् शुशुभे काननावृतम्।

—हरिवंश, विष्णुपर्व, अ० ६, श्लो० ३०।

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद्व्रजं गतः।

—भागवत, स्क० १०, अ० १, श्लो० ६६।

हुआ है। हिन्दी साहित्य[1] में आकर 'ब्रज' शब्द पहले पहल मथुरा के चारों ओर के प्रदेश के अर्थ में मिलता है किन्तु इस प्रदेश की भाषा के अर्थ में यह शब्द हिन्दी साहित्य में भी बहुत बाद को प्रयुक्त हुआ है। कदाचित् भिखारीदास कृत काव्यनिर्णय (सं० १८०३) में 'ब्रजभाषा' शब्द पहले पहले आया है, जैसे भाषा ब्रजभाषा रुचिर (काव्य० अ० १, छ० १४), या ब्रजभाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमानो (काव्य० अ० १ छ० १६)। प्राचीन हिन्दी कवियों ने केवल भाषा शब्द[2] समकालीन साहित्यिक देशभाषा ब्रजभाषा या अवधी आदि के लिये प्रयुक्त किया है, जैसे का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिये साँच (दोहावली, दो० ५७२), ताही ते यह कथा यथामति भाषा कीनी (नन्ददास कृत रासपंचाध्यायी, अ० १, पं० ४०)। इसी भाषा नाम के कारण उर्दू लेखक ब्रजभाषा को 'भाखा' कह के पुकारते थे। काव्य की भाषा होने के कारण राजस्थान में ब्रजभाषा 'पिंगल' कहलाई।

---

१ जैसे, सो एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू अड़ेल ते ब्रज को पावधारे।

—चौरासीवार्त्ता, सूरदास की वार्त्ता, प्रसंग १।

२—'भाषा' (संस्कृत धातु 'भाष्' बोलना) शब्द का इस अर्थ में प्रयोग अपने देश में बहुत प्राचीन काल से होता रहा है। कदाचित् यास्क कृत निरुक्त (१, ४, २) में पहली बार यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बहुत समय तक वैदिक संस्कृत से भेद करने के लिये लौकिक संस्कृत 'भाषा' कहलाती थी। बाद को लौकिक संस्कृत से भेद करने के

ब्रजभाषा का साहित्य में प्रयोग वास्तव में वल्लभसंप्रदाय के प्रभाव के कारण प्रारंभ हुआ। इलाहाबाद के साहित्य में प्रयोग निकट मुख्य केन्द्र अरैल (अडेल) के अतिरिक्त जिस समय श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य का ब्रज जाकर गोकुल तथा गोवर्द्धन को अपना द्वितीय केन्द्र बनाने की प्रेरणा हुई[1] उसी तिथि से ब्रज की प्रादेशिक बोली के भाग्य पलटे। संवत् १५५६ वैशाख सुदी ३ आदित्यवार को गोवर्द्धन में श्रीनाथजी के विशाल मंदिर की नींव रक्खी गई थी। यही तिथि साहित्यिक ब्रजभाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है। बीस वर्ष बाद यह मंदिर पूरा हो सका और संवत् १५७६ वैशाख बदी ३ अक्षय तृतीया को श्रीवल्लभाचार्य ने इस मंदिर में श्रीनाथजी की स्थापना की थी। किन्तु अभी भी श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्त्तन का प्रबंध ठीक नहीं हो पाया था। लगभग इसी

लिये प्राकृत तथा अपभ्रंश और फिर प्राकृत तथा अपभ्रंश से भेद दिखलाने के लिये आधुनिक आर्यभाषायें 'भाषा' नाम से पुकारी गईं। 'भाषा' शब्द वास्तव में समकालीन बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में बराबर प्रयुक्त हुआ है।

१—श्रीगोवर्द्धननाथजी के प्रागट्य की वार्ता के अनुसार संवत १५४९ (१४९२ ई०) फाल्गुण सुदी ११, बृहस्पतिवार को श्रीवल्लभाचार्यजी को ब्रज आने की प्रेरणा हुई और संवत् १५५२ (१४९५ ई०) श्रावण सुदी ५ बुधवार को श्रीनाथजी की स्थापना गोवर्द्धन के ऊपर एक छोटे मंदिर में हुई।

समय सूरदासजी से श्रीवल्लभाचार्यजी की भेंट हुई। अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करके श्रीवल्लभाचार्यजी ने सूरदासजी को श्रीगोवर्द्धननाथ जी के मंदिर में कीर्तन का काम सौंपा[1]। यह घटना संवत् १५८६ से पहले की होनी चाहिये क्योंकि इस वर्ष श्रीवल्लभाचार्य का देहान्त हो गया था। सूरदासजी ने आजीवन श्रीगोवर्द्धननाथजी के चरणों में बैठकर ब्रजभाषा काव्य के रूप में जो भागीरथी बहाई उसका वेग आज तक भी विशेष क्षीण नहीं हो पाया है। सोलहवीं शताब्दी के पहले भी कृष्णकाव्य लिखा गया था लेकिन वह सब का सब या तो संस्कृत में है, जैसे जयदेव कृत गीत-गोविन्द, या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में, जैसे मैथिल कोकिल विद्यापति कृत पदावली। ब्रजभाषा में लिखी गई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही ब्रजभाषा समस्त हिन्दी-भाषी प्रदेश की साहित्यिक भाषा मान ली गई। इसी समय हिन्दी की पूर्वी बोली अवधी का भी जायसी और तुलसी द्वारा साहित्य में प्रयोग किया गया किन्तु यद्यपि अवधी में लिखा गया रामचरितमानस हिन्दी-भाषियों का माथा है किन्तु तिस पर भी सर्व सम्मत साहित्यिक भाषा का स्थान अवधी को नहीं मिल सका। हिन्दी भाषी प्रदेश ही क्या इसके बाहर बंगाल, बिहार, राजस्थान, गुजरात आदि में भी कृष्ण भक्तों के बीच ब्रजभाषा का

१—चौरासी वार्त्ता, सूरदासजी की वार्त्ता, प्रसंग २।

विशेष आदर हुआ और इसकी छाप इन प्रदेशों की तत्कालीन साहित्यिक भाषा पर अमिट है। रहीम, रसखान आदि मुसलमान कवि भी इसके जादू से नहीं बच सके। आधुनिक काल में नवीन प्रभावों के कारण साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली हिन्दी ने ब्रजभाषा का स्थान ले लिया है किन्तु अमूल्य प्राचीन साहित्य भंडार के कारण ब्रजभाषा का स्थान हिन्दी की साहित्यिक बोलियों में सदा ऊँचा रहेगा।

आधुनिक ब्रज-भाषा प्रदेश

धार्मिक दृष्टि से ब्रजमंडल साधारणतया मथुरा ज़िले तक ही सीमित है किन्तु ब्रज की बोली मथुरा के चारों ओर दूर दूर तक बोली जाती है। आजकल ब्रजभाषा विशुद्ध रूप में मथुरा, अलीगढ़ और आगरा ज़िलों तथा भरतपुर और धौलपुर के देशी राज्यों में बोली जाती है। ब्रजभाषा का पड़ोस की बोलियों से कुछ मिश्रित रूप जयपुर राज्य के पूर्वी भाग तथा बुलन्दशहर, मैनपुरी, एटा, बदायूँ और बरेली ज़िलों तक बोला जाता है। ग्रियर्सन महोदय ने अपनी भाषासर्वे में पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रुख़ाबाद, हरदोई, इटावा तथा कानपुर की बोली को कनौजी नाम दिया है किन्तु वास्तव में यहाँ की बोली मैनपुरी, एटा, बरेली और बदायूँ की बोली से भिन्न नहीं है। अधिक से अधिक हम इन सब ज़िलों की बोली को पूर्वी ब्रज कह सकते हैं। सच तो यह है कि बुंदेलखंड की बुंदेली बोली भी ब्रजभाषा का ही एक रूपान्तर है। बुंदेली दक्षिणी ब्रज कहला सकती है।

आधुनिक ब्रजभाषा प्रदेश के उत्तर में सरहिन्दी खड़ीबोली, पूर्व में अवधी, दक्षिण में बुंदेली या मराठी तथा पश्चिम में पूर्वी राजस्थान की मेवाती तथा जयपुरी बोलियों का प्रदेश है। मातृभाषा के समान ब्रजभाषा बोलनेवालों की संख्या आज भी लगभग १ करोड़ २३ लाख है और इसका क्षेत्रफल ३८ हज़ार वर्गमील में फैला हुआ है।[१]

ब्रजभाषा के दूर तक फैलने के कारण धार्मिक और राजनीतिक दोनों ही हो सकते हैं। कृष्ण भगवान की जन्मभूमि होने के कारण चारों ओर का जनता का कई सदियों से ब्रज से घनिष्ठ संबंध रहता आया है। इसके अतिरिक्त *मुग़ल साम्राज्य* की राजधानी आगरा ब्रज प्रदेश में ही रही। इसका प्रभाव भी बिना पड़े नहीं रह सकता था।

उत्पत्ति

उत्पत्ति की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों-खड़ी बोली, बाँगरू, कनौजी तथा बुंदेली—के साथ ब्रजभाषा का संबंध भी शौरसेनी अपभ्रंश तथा प्राकृत से जोड़ा जाता है। शूरसेन ब्रज प्रदेश का ही प्राचीन नाम था ब्रजभाषा के समान एक समय शौरसेनी प्राकृत

१ तुलनात्मक दृष्टि से यों समझा जा सकता है कि ब्रजभाषा बोलने वाले यूरोप के आस्ट्रिया, बल्गेरिया, पुर्तगाल या स्वेडिन देशों की जनसंख्या से लगभग दुगुने हैं तथा डेनमार्क, नार्वे या स्विट्ज़रलैंड की जनसंख्या से लगभग चौगुने हैं। ब्रजभाषा प्रदेश यूरोप के आस्ट्रिया, हंगरी, पुर्तगाल, स्काटलैंड या आयर्लैंड देशों से क्षेत्रफल में अधिक है।

भी लगभग समस्त उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा रही है। विद्वानों के अनुसार तो कदाचित् पाली तथा संस्कृत भी व्रज या शूरसेन प्रदेश की बोली के और भी अधिक प्राचीन रूप के आधार पर बनी हुई साहित्यिक भाषाएँ थीं। यदि यह अनुमान सत्य है तो व्रजभाषा का स्थान भारतीय भाषाओं में सर्वोपरि मानना पड़ेगा।

व्रजभाषा के लक्षण तथा निकटवर्ती भाषाओं से तुलना

व्रजभाषा के लक्षण

हिन्दी भाषा के अन्तर्गत बिहारी तथा राजस्थानी बोलियों के अतिरिक्त आठ बोलियाँ मुख्य हैं। तीन पूर्वी बोलियों के दो समूह हैं, अवधी-बघेली और छत्तीसगढ़ी तथा पाँच पश्चिमी बोलियों के भी दो समूह हैं खड़ीबोली-बाँगरू और व्रजभाषा-कनौजी-बुंदेली। हिन्दी की पश्चिमी बोलियों में खड़ीबोली-बाँगरू समूह पंजाबी से मिलता जुलता है तथा व्रजभाषा-कनौजी-बुंदेली समूह का भाषासंबंधी वातावरण पूर्वी राजस्थानी तथा गढ़वाली-कुमायूँनी के अधिक निकट है।

किसी भी भाषा की मुख्य विशेषतायें व्याकरण के रूपों से स्पष्ट होती हैं। इस दृष्टि से व्रजभाषा के प्रधान लक्षण नीचे दिये जाते हैं। संज्ञा तथा विशेषणों में ओ या औ अन्तवाले रूप विशेष उल्लेखनीय हैं, जैसे बड़ो, घोड़ो, पीरो। संज्ञा का विकृतरूप बहुवचन न प्रत्यय के रूपान्तर लगाकर बनता है, जैसे छविलिन, घोड़न।

परसर्गों में कर्म-संप्रदान में कौ, करण-अपादान में सों तें इत्यादि तथा सम्बन्ध में कौ को विशेषरूप हैं।

सर्वनामों में उत्तमपुरुष मूलरूप एकवचन हौं, विकृत रूप मो, संप्रदान कारक के वैकल्पिक रूप मोहिं आदि तथा संबन्ध के ओकारान्त मेरो, हमारो रूप व्रजभाषा की विशेषताओं में से हैं।

क्रिया के रूपों में ह लगाकर भविष्य निश्चयार्थ बनाना जैसे चलिहै तथा सहायक क्रिया के भूत निश्चयार्थ के हो हतो आदि रूप विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

व्रजभाषा की कुछ प्रवृत्तियें पश्चिमी भूमिभाग में तथा कुछ पूर्वी भूमिभाग में विशेषरूप से पाई जाती हैं। उदाहरण के लिये पूर्वकालिक कृदन्त के-य-सहितरूप, जैसे चल्यौ या चल्यो, व लगा कर क्रियात्मक संज्ञा बनाना जैसे चलिवो, ग भविष्य जैसे चलैगो, सहायक क्रिया के भूतकाल के हो आदि रूप, उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम हौं तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम का को रूप पश्चिमी व्रजभाषा प्रदेश की कुछ विशेषताएँ हैं। पूर्वकालिक कृदन्त में य का प्रयोग न होना जैसे चलो, न लगाकर क्रियात्मक संज्ञा बनाना जैसे चलनो, ह भविष्य जैसे चलिहै, सहायक क्रिया के भूतकाल में हतो आदि रूप, उत्तमपुरुष एकवचन सर्वनाम मैं तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम कौन ये रूप विशेषतया पूर्वी व्रजभाषा प्रदेश में पाए जाते हैं। किन्तु ये प्रवृत्तियें ऐसी नहीं हैं जो एक दूसरे प्रदेश में बिलकुल न मिलती हों। अधिकांश रूपों में ये प्रवृत्तियें मिलती

हैं अतः सुविधा के लिए इस प्रकार का विभाग किया जा सकता है।

ग्रियर्सन महोदय ने[1] हिन्दी की कनौजी बोली को व्रजभाषा से भिन्न माना है परन्तु जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कनौजी कोई भिन्न बोली नहीं है। अधिक से अधिक उसे पूर्वी व्रजभाषा कहा जा सकता है। व्रजभाषा के जो मुख्य लक्षण ऊपर दिए गए हैं वे प्रायः सब के सब कनौजी में भी पाए जाते हैं तथा कनौजी की जो विशेषताएँ 'सर्वे' में दी गई हैं वे 'सर्वे' के अनुसार ही व्रजभाषा के किसी न किसी प्रदेश में मिलती हैं। ग्रियर्सन महोदय भी संज्ञाओं आदि में -औ के स्थान पर -ओ मिलना कनौजी के साथ साथ व्रजभाषा के कुछ रूपों में भी मानते हैं। अकारान्त संज्ञाओं के स्थान पर उकारान्त या इकारान्त रूप मिलना वास्तव में कनौजी की कोई विशेषता नहीं है बल्कि यह प्रवृत्ति ठेठ ग्रामीण बोलियों में साधारणतया और अवधी में विशेषतया पाई जाती है और इसलिए अवधी के निकटवर्ती समस्त व्रजभाषा प्रदेश में यह प्रवृत्ति विशेष दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार शब्द के मध्य में आने वाले ह का लोप भी कनौजी के साथ साथ व्रजभाषा तथा हिन्दी की अन्य बोलियों में भी पाया जाता है। कुछ पुल्लिंग आकारान्त संज्ञाओं का मूलरूप ओकारान्त न होना (जैसे लरिका) तथा विकृतरूप एकवचन में -आ का -ए में परिवर्तित न होना भी

व्रजभाषा और कनौजी

[1] लि० स० इं० जिल्द ६, भाग १, पृ० ८३।

कनौजी की कोई विशेषता नहीं है। यह प्रवृत्ति भी ब्रजभाषा में मौजूद है। निश्चयवाचक सर्वनाम भी जो ग्रियर्सन के अनुसार भी ब्रजभाषा के पूर्वी भाग में मिलते हैं तथा कनौजी के विशेषरूप बहु यह वास्तव में अवधी के प्रभाव के कारण हैं।

क्रिया के पूर्वकालिक कृदन्त के रूप जैसे दओ, लओ, गओ तथा सहायक क्रिया के हतो आदि भूतकाल के रूप ब्रजभाषा भूमि भाग में प्रचलित हैं। रहो रूपों में अवधी का प्रभाव स्पष्ट है तथा यो केवल -त अन्त वाले वर्तमानकालिक कृदन्त के रूपों के बाद ही मिलता है, जैसे जात हो=जात् यो। इस पर खड़ीबोली के या का प्रभाव भी हो सकता है।

इस प्रकार कनौजी बोली में एक भी विशेषता ऐसी नहीं है जो ब्रजभाषा में न मिलती हो। स्वयं ग्रियर्सन महोदय के अनुसार "कनौजी वास्तव में ब्रजभाषा का ही एक रूप है और इसको पृथक् स्थान सर्वसाधारण में पाई जाने वाली भावना के कारण दिया गया है।" भाषा विज्ञान के विद्वानों का सर्वसाधारण की भावना से इस प्रकार प्रभावित हो जाना कहाँ तक उचित है?

वास्तव में बुन्देली बोली भी ब्रजभाषा से विशेष भिन्न नहीं है। एक प्रकार से यह ब्रजभाषा का दक्षिणी रूप कहा जा सकता है। नीचे ब्रजभाषा और बुन्देली में पाई जाने वाली कुछ समानताओं की ओर ध्यान दिलाया जाता है।

१ लि० स० इ०, जिल्द ९, भा० १, पृ० १।

खड़ीबोली की पुल्लिंग तद्भव संज्ञायें ब्रजभाषा और बुन्देली दोनों में ओकारान्त हो जाती हैं, जैसे बुन्देली घोरो। संज्ञाओं के विकृत बहुवचन रूप बुन्देली में भी-अन लगाकर बनते हैं जैसे घोरन। परसर्ग ने, कों, से, सों, को भी दोनों बोलियों में समान हैं। सर्वनामों में मैं, तूँ, ऊँ रूपों को छोड़कर शेष समस्त रूप जैसे मो, तो मोय, तोय, हम, तुम, वे, जे, बिन, जिन आदि दोनों बोलियों में एक हो से हैं। पूर्वी ब्रज में पाये जाने वाले सहायक क्रिया के हतो आदि रूप बुन्देली में साधारणतया मिलते हैं। कुछ प्रदेशों में आदि ह के लोप से ये केवल तो आदि में परिवर्तित हो गये हैं। दोनो बोलियों में ह और ग वाले भविष्य के रूप तथा न और व वाले क्रियार्थक संज्ञा के रूप मिलते हैं। बुन्देली पूर्वकालिक कृदन्त में य नहीं लगता, जैसे चलो. लेकिन यह प्रवृत्ति हम समस्त पूर्वी ब्रजभाषा प्रदेश में देख चुके हैं।

सर्वे में[1] बुन्देली बोली की निम्नलिखित विशेषतायें बतलाई गई हैं। ब्रजभाषा शब्दों में पाई जाने वाली ऐ औ ध्वनियें बुन्देली में प्रायः ए ओ रूप में मिलती हैं, जैसे ब्रज कैहीं, बुन्देली केहों, ब्रज और बुन्देली ओर। इस प्रवृत्ति के कारण बुन्देली के अनेक शब्द कुछ भिन्न दिखलाई पड़ने लगते हैं, जैसे मे, बे, मरिहें इत्यादि। ब्रज में ड़ का प्रयोग होता है किन्तु बुन्देली में इसके स्थान पर र मिलता है जैसे ब्रज पड़ो बुन्देली परो। शब्दों के मध्य में पाया जाने वाला ह बुन्देली में प्रायः नियमित रूप से लुप्त हो जाता है,

[1] लि॰ स॰ इं॰, जि॰ ६, भा॰ १, पृ॰ ८१।

जैसे व्रज कही, बुन्देली कई। परसर्गों में कर्म कारक व्रज को के स्थान पर बुन्देली में खों हो जाता है। अनुनासिक स्वरों का अधिक प्रयोग बुन्देली की विशेषता है। ऊपर की प्रवृत्तियों के कारण व्रज में, तु, बौ के स्थान पर बुन्देली में मैं, तूँ, उ मिलते हैं। सर्वनामों में संबंध कारक के हमाओ तुमाओ रूप भी ध्यान देने योग्य हैं। सहायक क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों में भी प्रायः ह लुप्त हो जाता है।

व्रज और बुन्देली की तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों बोलियों में भेद ध्वनि समूह में विशेष है, व्याकरण के रूपों में उतना अधिक नहीं है।

व्रज और पूर्वी राजस्थानी

व्रजभाषा के पश्चिम में पूर्वी राजस्थान की जयपुरी और मेवाती बोलियाँ पड़ती हैं। इनमें और व्रजभाषा में कुछ साम्य पाये जाते हैं। पूर्वी राजस्थानी बोलियों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

उच्चारण में ड़ तथा मूर्द्धन्य ध्वनियाँ, विशेषतया न के स्थान पर ण का प्रयोग, पूर्वी राजस्थानी की विशेषता है। शब्दों के रूपों में संज्ञा का विकृत रूप बहुवचन -आँ लगाकर बनता है, जैसे घोड़ाँ, घराँ ; व्रज में -अन लगता है, जैसे घोड़न, घरन। परसर्गों में संप्रदान में व्रज कौ के स्थान पर नै, अपादान में सैं, संबंध कारक बहुवचन का विशेष ध्यान देने योग्य है। जयपुरी में करण कारक

१ लि० स० इं०, जिल्द ६, भाग २, पृ० २।

का चिह्न ने नहीं प्रयुक्त होता, जैसे मैं मार्यो यद्यपि यह मेवाती में मिलता है। संबंध कारक परसर्ग रो आदि पूर्वी राजस्थानी में नहीं हैं। ये रूप राजस्थानी की मारवाड़ी और मालवी बोलियों तक ही सीमित हैं।

सर्वनामों में पूर्वी राजस्थानी की बोलियों में अधिक भेद पाया जाता है, जैसे मूलरूप बहुवचन हमा, म्हे, आपाँ; तम, थम, थे; विकृत रूप एकवचन मूँ, मुज; म, मै; तूँ तुज; त, तई; विकृतरूप बहुवचन म्हाँ, आपाँ, तम, थाँ; संबंध कारक म्हारो, म्हाको, थारो, थाँको।

सहायक क्रियाओं में गुजराती के समान जयपुरी में छ रूप मिलते हैं, जैसे छूं, छो। इस बात में जयपुरी राजस्थानी की समस्त बोलियों से भिन्न है। अन्य राजस्थानी बोलियों में ह रूपही व्यवहृत होते हैं, जैसे हूँ हो इत्यादि। मूलक्रिया के संभावनार्थ रूपों में विशेष भेद नहीं है। उत्तमपुरुष बहुवचन में पूर्व राजस्थानी में चलाँ रूप होता है, ब्रज के समान चलैं नहीं। जयपुरी में स तथा ल लगा कर भविष्य काल बनता है, जैसे चलस्यूं चलूंलो। स भविष्य गुजराती में भी है। किन्तु मेवाती में ग भविष्य ही प्रचलित है, जैसे चलूंगो। संयुक्तकालों में वर्तमान काल बनाने के लिये पूर्वी राजस्थानी में सहायक क्रिया के वर्तमान कृदन्त में न लगाकर सम्भावनार्थ के रूपों में लगाते हैं। ण तथा व लगाकर क्रियार्थक संज्ञा तथा मो लगाकर पूर्वकालिक कृदन्त बनाने में ब्रज तथा पूर्वी राजस्थानी में साम्य है। वर्तमान-

कालिक कृदन्त पूर्वी राजस्थानी में -तो लगा कर बनता है, जैसे चलतो।

इसमें संदेह नहीं कि जयपुरी की अपेक्षा पूर्वी राजस्थानी की मेवाती बोली ब्रज के अधिक निकट है। ग्रियर्सन महोदय के अनुसार 'मेवाती में जयपुरी और ब्रजभाषा दोनों का मिलन होता है' कुछ विद्वानों के अनुसार मेवाती तथा अहीरवाटी ब्रजभाषा के ही रूपान्तर हैं किन्तु ग्रियर्सन महोदय इस मत का समर्थन नहीं करते।[1]

ब्रज और गढ़वाली-कुमायूंनी प्राचीन राजस्थानी से संबद्ध होने के कारण ब्रज और गढ़वाली-कुमायूंनी में भी कुछ साम्य मिलता है। ब्रज के समान ही तद्भव ओकारान्त संज्ञाओं तथा विशेषणों का बाहुल्य गढ़वाली कुमायूंनी दोनों में पाया जाता है, जैसे घोरो छोरो पीरो। विकृतरूप बहुवचन में कुमायूंनी में -अन अन्तवाले रूप मिलते हैं। परसर्गों में भी विशेषतया गढ़वाली में पर्याप्त समानता दिखलाई पड़ती है, जैसे कर्म संप्रदान कू करण-अपादान ते, संबध कारक को। अधिकरण का मा रूप भिन्न अवश्य है। यह पूर्वी हिन्दी बोलियों का स्मरण दिलाता है। सर्वनामों में कहीं कहीं भेद दिखलाई पड़ता है किन्तु साथ ही संबंध कारक के मेरो, हमारो, तेरो, तुमारो रूपों का साम्य ध्यान देने योग्य है। सहायक क्रिया में कुमायूंनी गढ़वाली दोनों में

---

[1] लि० स० इं०, जिल्द ६, भाग २, पृ० १, ४२।

जयपुरी के समान छ वाले रूप प्रयुक्त होते हैं, जैसे मैं छूँ। प्रधान क्रिया के रूपों में क्रियात्मक संज्ञा तथा भूतकालिक कृदन्त के रूप तो ब्रज से मिलते जुलते हैं, जैसे चलनो, चल्यो आदि किन्तु अन्य रूपों में कहीं कहीं भेद है, जैसे भविष्य चल्लो इत्यादि। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ब्रज तथा गढ़वाली-कुमायूंनी एक ही बड़े समूह के अन्तर्गत हैं। इन पहाड़ी बोलियों में पूर्वी राजस्थानी की कुछ विशेषतायें अवश्य मिलती हैं।

सरहिन्दा खड़ीबोली प्रदेश, विशेषतया मेरठ और मुरादाबाद के ज़िले, ब्रजभाषा के ठीक उत्तर में पड़ते हैं।

ब्रज और खड़ीबोली उच्चारण में ब्रज के ऐ औ खड़ीबोली में प्रायः ए ओ हो जाते हैं जैसे पैसा, ओर। राजस्थानी तथा पंजाबी के समान खड़ीबोली में भी मूर्द्धन्य ध्वनियों का प्रयोग विशेष पाया जाता है, जैसे पाणी, निकड़ (निकल)। शब्द के मध्य में ड, ढ का प्रयोग, जैसे बडा, चढाना, तथा स्वराघात युक्त दीर्घ स्वर के बाद व्यंजन को दुहराकर बोलना, जैसे गाड्डी, रोट्टी, खड़ीबोली की अन्य विशेषतायें हैं।

संज्ञाओं में विकृतरूप बहुवचन में -ओं या -ऊँ लगता है, जैसे घोड्डों, घरूँ; ब्रज में -अन तथा राजस्थानी और पंजाबी में -आँ लगता है। कारकों के अन्य रूपों में विशेष भेद नहीं है। परसर्गों में को, से, में (ब्रज कौ, सै, मै) ऊपर बतलाई हुई उच्चारण संबंधी प्रवृत्ति के उदाहरण स्वरूप हैं। संबंध कारक में खड़ी बोली में ब्रज कौ के स्थान पर का प्रयुक्त होता है। पंजाबी में दा आदि रूप

पाये जाते हैं। कर्म-संप्रदान नूँ पश्चिमी खड़ीबोली प्रदेश में पंजाबी प्रभाव के कारण पाया जाता है।

सर्वनाम के रूपों में खड़ी बोली में विशेष भेद पाया जाता है, जैसे मूलरूप में, तम ; विकृतरूप मुज, मभ, तुज, तभ ; संबंध कारक मेरा, हमारा, म्हारा ; तेरा, तुम्हारा, थारा। दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के मुख्य रूप खड़ीबोली में वो, विस, उस और विन हैं।

सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूप ह के आधार पर ही चलते हैं। उच्चारण संबंधी कुछ भेद अवश्य होजाते हैं किन्तु भूतकाल में था आदि रूप मिलते हैं। व्रज में हो आदि तथा पंजाबी में सा आदि रूप होते हैं। खड़ीबोली प्रदेश के कुछ भागों में हा आदि रूप भी पाये गये हैं। खड़ीबोली में वर्तमान तथा भूतकालिक कृदन्त -ता और -आ लगाकर बनते हैं, जैसे चलता, चला (तु० ब्रज चलत या चलतु तथा चलो या चल्यो ; पंजाबी चलदा, चल्या)। क्रियार्थक संज्ञा -णा लगाकर, जैसे चलणा, तथा पंजाबी के समान ही भविष्य काल ग लगाकर बनता है, जैसे चलूगा। संयुक्त काल बनाने के लिये खड़ीबोली में प्रायः संभावनार्थ के रूपों में सहायक क्रिया लगती हैं, जैसे मारूँ हूँ, मारूँ था यद्यपि जाता है आदि रूप भी प्रयुक्त होते हैं।

खड़ीबोली प्रदेश के दक्षिण-पूर्वी भाग में पंजाबी के स्थान पर ब्रजभाषा का प्रभाव विशेष दिखलाई पड़ता है।

हिन्दी की प्रमुख पूर्वी बोली अवधी का वातावरण व्रजभाषा से बहुत भिन्न है। अवधी संज्ञा में प्रायः तीन रूप

व्रज और अवधी होते हैं, ह्रस्व दीर्घ तथा तृतीय, जैसे घोड़, घोड़वा, घोड़उना। विकृत रूप बहुवचन का चिह्न न, जैसे घरन अवधी तथा व्रज में समान है किन्तु परसर्गों में अवधी में कुछ विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं. जैसे कर्म में का (व्रज कौ), संबंध में केर (व्रज को), अधिकरण में मा (व्रज मैं)।

सर्वनाम के रूपों में विशेष भेद नहीं पाया जाता, जैसे मैं, मो हम ; तूं, तो, तुम। किन्तु संबंध कारक में प्रयुक्त होने वाले अवधी के मोर तोर, हमार, तुमार पूर्वी आर्यवर्त्ती भाषाओं के इन रूपों के अधिक निकट हैं।

सहायक क्रिया के दो रूप अवधी में मिलते हैं, ह रूप तो प्रायः व्रज के समान ही है यद्यपि पूर्वी अवधी में इसके रूप कुछ भिन्न प्रकार से चलते हैं, जैसे १ अहौं अही, २ अहे अहो, ३ अहै अहीं। दूसरा रूप बाट् धातु के आधार पर चलता है जैसे बाटेउँ, बाटी आदि। यह धातु वास्तव में भोजपुरी की है किन्तु इसके रूपों का प्रयोग पूर्वी अवधी प्रदेश में प्रचलित है। सहायक क्रिया के भूतकाल के रूप अवधी में रह् धातु के आधार पर चलते हैं, जैसे रहेउँ, रहे आदि (दे० व्रज हो, खड़ीबोली था)।

व क्रियार्थक संज्ञा जैसे अवधी देखब, तथा त वर्तमान कालिक कृदन्त, जैसे अवधी देखत व्रज तथा अवधी में समान हैं यद्यपि इन कृदन्ती रूपों में अवधी में कुछ विशेष भेद पाये जाते हैं। इसी प्रकार

भूतकालिक कृदन्त के रूप भी अवधी में वचन, लिंग तथा पुरुष के कारण भिन्न भिन्न होते हैं, संयुक्त काल अवधी में प्रायः कृदन्तों के आधार पर ही चलते हैं। अवधी में भविष्य काल के अधिकांश रूप व लगा कर बनते हैं, जैसे अवधी देखब् आदि (हे० ब्रज देखिहौं या देखुंगो। अवधी की यह दूसरी विशेषता है जो अन्य पूर्वी आर्यावर्ती भाषाओं में भी मिलती है। ह भविष्य काल के रूप भी कुछ पुरुषों तथा वचनों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे ३ देखिहै, देखिहैं।

अवधी एक प्रकार से मध्यवर्ती भाषा है। एक ओर तो इसमें ब्रजभाषा के अनेक रूप मिलते हैं और दूसरी ओर पूर्वी भाषाओं के कुछ चिह्न भी दिखलाई पड़ने लगते हैं। प्राचीन काल में इसी भूमिभाग की भाषा अर्द्ध मागधी बतलाई जाती है। यह नाम अब भी सार्थक प्रतीत होता है।

ब्रजभाषा के अध्ययन की सामग्री

अन्यप्रमुख आधुनिक आर्यावर्ती भाषाओं के समान ब्रजभाषा भी अपने प्रदेश की मध्यकालीन भाषा के अन्तिम रूप शौरसेनी अपभ्रंश से ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग धीरे धीरे विकसित हुई होगी, किन्तु दुर्भाग्य से ब्रजभाषा के इतने प्राचीन प्रामाणिक उदाहरण अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।

१३ वीं से १६ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक

हिन्दी की प्रकाशित सामग्री में बीसलदेवरासो तथा पृथ्वीराज-रासो केवल ये दो ग्रंथ १२ वीं शताब्दी के लगभग रक्खे जाते हैं।'

इनमें से बीसलदेव रासो का रचना काल सं० १२१२ माना जाता है, किन्तु इस ग्रंथ की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सं० १६६९ की बतलाई जाती है। बीसलदेव रासो के उपलब्ध संस्करण का संपादन इस प्रति की प्रतिलिपि तथा सं० १९५९ ई० की लिखी एक अन्य हस्तलिखित प्रति के आधार पर हुआ है[1]। यदि यह ग्रंथ १३ वीं शताब्दी का मान भी लिया जावे तो भी यह पिंगल अर्थात् ब्रजभाषा में न होकर डिंगल अर्थात् राजस्थानी बोली में लिखा ग्रंथ है, जैसा छ सहायक क्रिया, स भविष्य, न के स्थान पर ण के बाहुल्य तथा इसी प्रकार के अन्य राजस्थानी लक्षणों से प्रतीत होता है। ओझा जी के अनुसार इसकी रचना कदाचित् हम्मीर देव के समय में हुई थी।[2]

१३ वीं शताब्दी के लगभग के माने जाने वाले दूसरे ग्रंथ पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के बारे में इतिहासज्ञों को बहुत संदेह है। रासो की सब से प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १६४२ की उपलब्ध हो सकी है। ओझा जी के अनुसार इस वृहत् रासो को चन्द से इतर किसी अन्य कवि ने ० १६०० के लगभग लिखा था[3]। भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ अवश्य प्रधान रूप से

१ बीसलदेव रासो, संपादक सत्यजीवन वर्मा, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० १९८१ वि०।

२ राजपूताने का इतिहास, भूमिका पृ० १६।

३ ओझा— पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोशोत्सव स्मारक पृ० २६-६६, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९८६ वि०,

ब्रजभाषा में है[१] किंतु इस में प्रोजगुण लाने के लिये शब्दों के भ्रमात्मक प्राकृत रूपों की भरमार है इसी कारण इसके प्राचीन ग्रंथ होने में सन्देह होता है।[२] वीररस से संबंध रखने वाले तुलसीदास तथा भूषण आदि १७ वीं तथा १८ वीं शताब्दी के कवियों की ब्रजभाषा रचनाओं में भी यह शैली कुछ कम मात्रा में बराबर व्यवहृत हुई है। जो हो पृथ्वीराज रासो की भाषा खड़ी बोली या राजस्थानी न होकर प्रधान रूप से ब्रजभाषा है, यद्यपि इस ग्रंथ के संबंध में अनेक प्रकार के सन्देह होने के कारण ब्रजभाषा के वर्तमान अध्ययन में इससे सहायता नहीं ली गई है।

१४ वीं तथा १५ वीं शताब्दी की भी कोई प्रामाणिक ब्रजभाषा रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। संस्कृत तथा प्राकृत ग्रंथों से संकलन करके 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक से एक लेखमाला स्वर्गीय पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने लिखी थी[३]। इस सामग्री

---

१ पृथ्वीराज रासो की भाषा के संबंध में देखिये बीम्स—चन्द बरदाई के व्याकरण का अध्ययन, जर्नल आफ़ दि बंगाल एशियाटिक सोसायटी, १८७३ ई०, भाग १, पृ० १६५।

२ मम्मट के आधार पर भिखारीदास ने ओज की परिभाषा निम्नलिखित दी है :—

उद्धत अच्छर जहँ परै, स क टवर्ग मिलि जाय।
ताहि ओज गुण कहत हैं, जे प्रवीन कविराय॥
काव्य०, गुननिर्णय ३।

३ गुलेरी—पुरानी हिंदी, ना० प्र० प०, भाग २।

का समावेश हिन्दी साहित्य के इतिहासों में भी प्रायः कर लिया गया है किन्तु ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पुरानी हिन्दी में (१२ वीं से १४ वीं शताब्दी) प्राकृत तथा अपभ्रंशपन की मात्रा पर्याप्त है, इसके अतिरिक्त आधुनिकता का जो थोड़ा पुट इस भाषा में मिलता है वह राजस्थानी-गुजराती भाषाओं के प्राचीन रूप की ओर संकेत करता है, जैसे स भविष्य का प्रयोग, मूर्द्धन्य वर्णों के प्रयोग की ओर झुकाव आदि। व्रजभाषा अथवा वास्तविक हिंदी का प्राचीन रूप हमें इन नमूनों में क़रीब क़रीब बिलकुल भी नहीं मिलता। ख़ुसरो (१३१२-१३८१ वि०) की हिन्दी रचनाओं का वर्तमान रूप बहुत आधुनिक मालूम होता है। इसके अतिरिक्त ख़ुसरो की अधिकांश रचनायें व्रजभाषा में न होकर खड़ी-बोली में है।

हिन्दी साहित्य के इतिहासों में गोरखनाथ को (१३ वीं शताब्दी)[1] प्रायः प्रथम व्रजभाषा गद्यलेखक माना जाता है किन्तु इनका कोई भी ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। गोरख नाथ की कुछ रचनायें १३०० वि० के लगभग की बतलाई जाती हैं किन्तु इन ग्रंथों का लिपिकाल १६वीं शताब्दी के मध्य में

---

१ द्विवेदी—गोरखनाथ का समय, हिन्दुस्तानी, जनवरी १९३२।

गोरखनाथ का समय कुछ लोग ९ वीं या १० वीं शताब्दी मानते हैं, दे० मोहनसिंह-गोरखनाथ ऐन्ड मेडीवल हिन्दू मिस्टीसिज़्म, १९३६ ई०। इस पुस्तक में गोरखनाथ का एक ग्रन्थ 'गोरखबोध' भी सम्मिलित है।

पड़ता है।[1] विद्यापति (१५ वीं शताब्दी) की पदावली मैथिली भाषा में है जिसमें कहीं कहीं ब्रजभाषा के रूपों का प्रयोग मिल जाता है। पदावली के वर्तमान संस्करण प्रामाणिक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर संपादित नहीं हुए हैं बल्कि आधुनिक काल में जनता के बीच प्रचलित गीतों का संकलन प्रायः इनमें मिलता है। कबीर (१५ वीं शताब्दी) की रचनाओं की भी ऐसी ही अवस्था है। इनकी भाषा या तो आधुनिकता से युक्त प्रधान रूप से भोजपुरी अवधी तथा खड़ीबोली का मिश्रित रूप है या पंजाबी और खड़ीबोली का मिश्रित रूप।[2] ब्रजभाषा की पुट बहुत ही न्यून मात्रा में कहीं कहीं मिल जाती है। ग्रंथ साहब, जिसका संकलन १६ ६१ वि० में हुआ था, पंजाबी के प्रभाव से युक्त खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा के मिश्रित रूप में लिखा गया है।

ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों आदि से भी प्राचीन ब्रजभाषा की सामग्री अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। कुछ प्राचीन परवाने और पत्र, जिनके नमूने हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहासों में

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, १९८६ वि०, पृ० ४८०।

२ श्यामसुन्दर दास—कबीर ग्रंथावली, १९२८ ई० यह संस्करण १५०४ ई० की हस्तलिखित प्रति के आधार पर संपादित बतलाया जाता है।

अर्वतक उद्धृत मिलते हैं, जाली साबित हो चुके हैं।[1] चार प्रधान वैष्णव आचार्यों में से निंबार्काचार्य का संबंध वृन्दावन से रहा बतलाया जाता है किन्तु प्रादेशिक भाषा को उनके वृन्दावन में आने से कुछ उत्तेजना मिली इसका कोई प्रमाण अभी तक हस्तगत नहीं हुआ है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि व्रजभाषा से संबंध रखने वाली १५ वीं शताब्दी तक की प्रकाशित प्रामाणिक सामग्री अभी शून्य के बराबर है।

१६वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से १६वीं तक का सामग्री

जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका, है व्रजभाषा साहित्य का इतिहास उस तिथि के बाद से प्रारंभ होता है जब से महाप्रभु वल्लभाचार्य (१५३६—१५८८ वि०) ने इलाहाबाद के निकट अरैल के अतिरिक्त व्रज में गोकुल और गोवर्द्धन को अपना द्वितीय केन्द्र बनाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने संप्रदाय से संबंध रखने वाले मन्दिरों में कीर्तन का प्रबंध किया। वल्लभाचार्य के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ और पौत्र गोकुलनाथ ने व्रज साहित्य की समुन्नति में स्वयं भी भाग लिया तथा अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों को भी प्रोत्साहित किया। पुष्टिमार्ग से संबंध रखने वाले कवियों में अष्टछाप के प्रमुख कवि सूरदास तथा नन्ददास प्रसिद्ध ही हैं। स्वयं गोकुलनाथ

---

[1] ओझा—आनंद विक्रम संवत् की कल्पना, ना० प्र० प० भाग १, पृ० ४१२।

के नाम से प्रसिद्ध चौरासी वैष्णवन की वार्ता ब्रजभाषा गद्य का प्रथम प्रकाशित ग्रंथ है।

इस स्थान पर मीरों (१६ वीं १७ वीं शताब्दी) का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। मीरों की मातृभाषा राजस्थानी थी, अतः मीरों के नाम से प्रचलित पदों की भाषा में राजस्थानीपन पर्याप्त है किन्तु ब्रज तथा गुजरात में रहने के कारण इन प्रदेशों में प्रचलित पदों में इन प्रादेशिक बोलियों की छाप भी पर्याप्त मिलती है। विद्यापति की पदावली के समान मीरों की पदावली का भी कोई प्रामाणिक संग्रह अभी उपलब्ध नहीं है। जो हो मीरों की रचना विशुद्ध ब्रजभाषा कभी भी सिद्ध न हो सकेगी।

१६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ करके १६ वीं शताब्दी तक का हिन्दी साहित्य का इतिहास वास्तव में ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास है। जायसी कृत पद्मावत तथा गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस को छोड़ कर कोई भी बड़ा ग्रंथ ब्रज से इतर बोली में नहीं लिखा गया। स्वयं तुलसीदास की अन्य समस्त बड़ी रचनायें, जैसे कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका आदि ब्रजभाषा में हैं।

१७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रमुख कवियों में हित हरिवंश, नरोत्तमदास तथा नाभादास का उल्लेख करना आवश्यक है।

१७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पहुँचते पहुँचते ब्रजभाषा साहित्य काव्य शास्त्र से विशेष प्रभावित होने लगा। धार्मिकपुट तो बहाना मात्र रह गया—'आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई

नातो राधिका कन्हाई सुमिरिबे को बहानो है'। इस काल के प्रमुख कवि केशव, रसखान, सेनापति, बिहारी, मतिराम तथा भूषण थे। १७ वीं शताब्दी की काव्य शैली कुछ अधिक अस्वाभाविक रूप में १८ वीं १९ वीं शताब्दी में भी चलती रही। इस शताब्दी के प्रमुख कवियों में गोरेलाल, देवदत्त, घनानन्द, भिखारीदास तथा पद्माकर का नाम लिया जा सकता है। केशवदास से प्रारंभ होने वाली काव्य शैली के अन्तिम प्रसिद्ध कवि पद्माकर थे जिनकी कविता का जीवित प्रभाव ब्रजभाषा प्रेमी जनता पर अब तक मौजूद है। खड़ी बोली के प्रथम प्रसिद्ध लेखक लल्लूलाल (१९ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) भी ब्रजभाषा में रचना करते थे। उनका राजनीति शीर्षक हितोपदेश का ब्रजभाषा अनुवाद ब्रजभाषा गद्य का द्वितीय तथा अन्तिम प्रसिद्ध प्रकाशित ग्रन्थ है। टीकाओं के रूप में इस काल में ब्रजभाषा गद्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया किन्तु इनकी शैली अत्यन्त कृत्रिम थी।

यद्यपि २०वीं शताब्दी के प्रारंभ से हिन्दी-भाषी प्रदेश में गद्य की भाषा खड़ी बोली होगई थी किन्तु पद्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रभाव इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्थिर रहा बल्कि कुछ कुछ अब तक भी चल रहा है। ग्वाल, पजनेस, सरदार आदि प्राचीन शैली के छोटे छोटे कवियों के अतिरिक्त हिन्दी खड़ी बोली गद्य को परिमार्जित करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन राजा लक्ष्मण सिंह तथा राजा शिवप्रसाद आदि की अधिकांश पद्यात्मक रचनायें ब्रजभाषा में ही हैं। २० वीं

शताब्दी उत्तरार्द्ध में पहुँचकर पद्य के क्षेत्र में भी खड़ी बोली ब्रजभाषा का स्थान बहुत तेज़ी से ले रही है। लेकिन इन गये बीते दिनों में भी ब्रजभाषा में रत्नाकर कृत गंगावतरण तथा वियोगीहरि कृत वीरसतसई जैसी पुरस्कार योग्य पुस्तकें प्रकाशित होती जा रही हैं। पुरानी पीढ़ी के हिन्दी कवि अब भी उमर ढलने पर कृष्ण भगवान के साथ साथ ब्रजभाषा के प्रभाव से प्रभावित हुये बिना नहीं रहते।

शब्द समूह

संस्कृत शब्द

प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य में तत्सम संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। आजकल कुछ लोगों की धारणा हो गई है कि आधुनिक हिन्दी बंगला आदि संस्कृत शब्दावली से बहुत अधिक प्रभावित हो रही हैं। वास्तव में यह मत भ्रमात्मक है। यदि प्राचीन साहित्य का अध्ययन ध्यान पूर्वक किया जाय तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि उस समय भी साहित्यिक भाषा संस्कृत गर्भित हो थी। उदाहरण स्वरूप नीचे कुछ उद्धरण प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य से दिये जा रहे हैं :—

गई ब्रज नारि यमुना तीर।
संग राजति कुँवरि राधा भई शोभा भीर॥
देखि लहरि तरंग हर्षी रहत नहिं मनधीर।
स्नान को वे भईं आतुर सुभग जल गंभीर॥

सूर० प० १

वल्कल बसन धनुबान पानि तून कटि
रूप के निधान घन दामिनी बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाए अंग
नवल कँवल हू ते कोमल चरन हैं।

कवि० २, १७

सरजू-सरिता-तट नगर बसै बर
अवध नाम यशधाम धर।
अघ ओघ विनाशी सब पुरवासी
अमर लोक मानहुँ नगर॥

राम० १, २३

तहाँ राजा की बात सुनि विष्णु शर्मा वृद्ध ब्राह्मण सकल नीति शास्त्र कौ जान बृहस्पति समान बोल्यौ कि महाराज राज कुमार तो पढ़ायवे योग्य हैं।

राज० ६

आधुनिक संस्कृत गर्भित शैली वास्तव में इस प्राचीन शैली का ही वर्तमान रूप है। प्राचीन ग्रंथों में ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं जिनमें संस्कृत शब्दावली की मात्रा और भी अधिक है। उदाहरणार्थ तुलसीदास की विनयपत्रिका के स्तोत्रों में हमें लम्बे लम्बे समासों तथा वाक्यों के अन्त में आनेवाले एक दो भाषा के शब्दों को छोड़ कर शेष समस्त रचना प्रायः विशुद्ध संस्कृत में मिलती है। तत्सम शब्दों के साथ उनके तद्भव रूप भी स्वतंत्रता पूर्वक प्रयुक्त हुये हैं। वास्तव में इनका प्रतिशत प्रयोग अधिक है।

फ़ारसी अरबी शब्द

संस्कृत से आने वाले तत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त प्राचीन ब्रजभाषा में फ़ारसी अरबी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी बहुत स्वतंत्रता पूर्वक प्रयुक्त हुए हैं यद्यपि समस्त शब्दावली में इनका प्रतिशत प्रयोग कदाचित् एक से अधिक नहीं पड़ेगा। प्रसिद्ध कवियों में हित हरिवंश, नरोत्तमदास, नन्ददास, नाभादास, केशवदास, देव, मतिराम, घनानन्द तथा लल्लूलाल की कृतियों में विदेशी शब्द अपेक्षित रूपसे कम आये हैं। ब्रजभाषा में प्रयुक्त फारसी अरबी शब्दों की एक सूची नीचे दी जाती है। यह सूची बहुत अपूर्ण है तो भी इसको देख कर यह अनुमान हो सकेगा कि ब्रजभाषा के बड़े से बड़े कवियों को विदेशी शब्दों को शोध के अपनी भाषा में मिला लेने के सम्बन्ध में तनिक भी संकोच नहीं था। जैसा स्वाभाविक है, भूषण की रचनाओं में फारसी अरबी शब्दों का प्रयोग सब से अधिक हुआ है :—

अँदेस काव्य० २६, २६, अदली शिव० २४७, अबस शिव० ४८, अमाल शिव० ७३, असबाब कविता० ५, १२, असवार वार्त्ता० ३८, ३, आम-खास शिव० १५०, आलमगीर छत्र० १६, ३, आसा वार्त्ता० ४०, १२, इजाफा सत० २, इलाज शिव० २७०, इलाम शिव० १६८, उमराउ छत्र० ९, ५, उमिर जगत्० २, ६,

कतलाम शिव० २२६, कबूलिगो काव्य०२८, २४, कमान कवित्त० २, ४, करैजे कवित्त० २, ४, करौलनि शिव० ९०, कसाई कवित्त० २, ४, कसीसैं शिव० ११४, कहरी कविता० ६, २९, कागद सत० ६०, केसव

कविता० ७, ६७, खबरि वार्त्ता० २, ६, खर्च वार्त्ता० २०, ५, खलक, शिव० १६२, कविता० ६, २५, खान कुम्र० १, ५, खास रसखा० २०, २, खुमार रसखा० ३५, ३३, खोम शिव० ३६, ख्याल वार्त्ता० २१, १७, जगत्० ७, २६, काव्य० ३७, ७, कविता० ६, २७, सूर० य० २२, ख्वारी रसखा० ४३, ५१, गडकान शिव० ३५०, गमिहै कविता० ७, ७१, गरीब कविता० ७, ६६, गरीबु सन० ५८, गरूरे कुम्र० ११, ३, गाजी शिव० १६८, गुमान कविता० १, ६, काव्य०१६, ५, गुलाब भाव० १, २२, काव्य० २७, १८, गुलाबन जगत्० ३, १२, गुलाम कविता० ७, १०६, गुलामी काव्य० २८, २४, गुसुलखाने शिव० ३४, गेरमिसिल शिव० ३४,

चकत्ता शिव० ३४, जवाब वार्त्ता० २४, ५, जसन (शिव० १६८) जहाज कविता० ५, ४६, जहान शिव० १०, जादू रसखा० २८, १६, जाफता शिव० ३८, जाहिर काव्य० २३, ५२, शिव० १०, जगत्० १, २, कुम्र० ४, ७, जिरह कविता० २, ३५, जुवान जगत्० १०, ४३, जुमिला शिव० ११२, जुलुम शिव० १६८, जोर सूर०म० ७, जगत्० २, ६,

तकिया शिव० १०, तमाइ कविता० ७, ७३, तमामी वार्त्ता० २६, १६, तलास काव्य० ३६, १५, ताज कविता० ६, ३०, ताहता सत० ७०, तीर कविता० २, ४, तुजुक शिव० ३८, तेगन कुम्र० २२, १, तेजी कविता० ७, १६, दगाबाज कविता० ७, ६५, दगोगे सुजा० १३, दर्द कवित्त० २, ५, दस्तुरति कुम्र ७, १६, दरबार, सुदामा० २४, राम० १, ५१, दराज जगत्० २, ६, दरियाव शिव० १७८, जगत् १, ५, दिवानी रसखा० २१, ५, दाग़ि वार्त्ता० २७, ११, नजर काव्य० ३६, १५, नसा, सूर० य० ३०, निवाजिबो सत० ५८, निवाजिहैं कविता० ६,

२, निसान सत० १०३, निमानी कवित्त० २, ३, नेजा जगत्० ११, ४६, सत० ६, नौक सत० ६,

पनाह शिव० ११२, परदा कविता० १६, पाइमाल कविता० ५, १६, पातसाह वार्त्ता० २४, २५ पील शिव० १५६, पैगम्बर शिव० २४२, फहम कविता० ६, ८, फौज छत्र० २०, ६, सब० ८०, बकसी सूर० म० १६, बदरङ्ग शिव १२५, बदराह सत० ६३, बन्दीखाने वार्त्ता० ३५, १४, बलाइ सत० ३७, रसला० २५, १३, बाज कविता० ६, ६, बाजार वार्त्ता० २६, १७, बाजे कविता० ५, २१, बादवान शिव० ६१, बादशाह वार्त्ता० ६, ६, बुलन्द छत्र० ४, १८, बे-इलाज शिव० २७१, बेशरम सूर० म० २, बैरष कविता० ७, १०६, मखमल, जगत्० ३, १२, मजबूत काव्य ३७ ७, मरद छत्र० ७, १४, मरदानै छत्र० ३, १६, महोर वार्त्ता० ११, ८, मसीत कविता० ७, १०६, मुजरा छत्र० २४, १५ मुहीम शिव० १८०,

रवा कविता० ७, ५६, रिसाल शिव० १०२, लरजा शिव० ११८, लायक राय० १, २१, कविता० १, २२, वार्त्ता० ३०३, लोगनि सूर० म० १०,

शर्माय सूर० म० ४, शहर छत्र० १२, १४, शोर सूर० म० ७, सकस शिव० ३१, सरकस कविता० ७, ८२, सरजा शिव० ८, सरीफ शिव० २६८, सरीकता कविता० १, १६, सहमत कविता० ६, ४३, सही कविता० १, १६, साहब कविता० ५, ६, साहि छत्र० १४, ७, साहेब जगत्० १, ५, सिकदार सूर० म० १६, सिपारसी कवित्त० २, २४, सिरताज सत० ४, सुवा छत्र० १६, २, सोर वार्त्ता० २३, १४, सोरा सत० ६०, सौकु कवित्त० २, २७,

हजरत लाल० ११, ६, हजार रसखा० ३४, सूर० य० २५, सत० ६१, हजूर काव्य० ३६, १५, हद्द जगत्० १, ५, हबूर कविता० ७, १०६, हमाल शिव० ७२, हरम १७३, हराम कविता० ७, ७६, हवाई कवित्त० २, ६, हवाल सत० ३८, हवाले वार्त्ता० ३६,६, हलक कविता० ६, २५, हाकिम वार्त्ता० २४, ११, हौसा कृष्ण० ५,४, हुकुम काव्य० ४५, ११, जगत्० २, ८, हूरन कृष्ण० २२, २।

लिपि शैली

हस्त लिखित ग्रंथों की लिपि शैली की कुछ विशेषताएं

ब्रजभाषा की हस्तलिखित पोथियें साधारणतया देवनागरी लिपि में लिखी मिलती हैं। कभी कभी दो एक ग्रंथ फ़ारसी-अरबी या उर्दू लिपि में भी लिखे पाये गये हैं। प्राचीन हस्तलिखित पोथियों की लिपि-शैली प्रचलित देवनागरी लिपि से कहीं-कहीं भिन्न मिलती है यद्यपि अधिकांश अक्षर दोनों में समान हैं। नीचे कुछ ऐसे भेदों के उदाहरण दिये जाते हैं जो प्राचीन उच्चारण पर प्रकाश डालते हैं।

प्रायः ज के स्थान पर य तथा ख के स्थान पर ष मिलता है। आवश्यकता पड़ने पर ष के लिये भी ष ही लिखा मिलता है यद्यपि उच्चारण की दृष्टि से कदाचित् इसका उच्चारण भी श के समान स होगया था। अन्तस्थ य का निर्देश करने के लिये य़ अक्षर अनेक हस्तलिखित पोथियों में पाया जाता है। श तथा ष दोनों के स्थान पर प्रायः स का ही प्रयोग हुआ है। श के स्थान

पर प्रायः पोथियों में उच्चारण के अनुरूप य मिलता है। व और ब का भेद बहुत ही कम किया गया है। कदाचित् दोनों का उच्चारण ब ही होता था। दन्त्योष्ठ्य व का निर्देश करने के लिये ब अक्षर पाया जाता है। इ ई, ऐ के स्थान पर हि, ही, अै का प्रयोग भी अनेक पोथियों में किया गया है।

अर्द्धचन्द्र और अनुस्वार में यद्यपि साधारणतया भेद किया गया है किन्तु अवसर नहीं भी किया जाता है। अनुनासिक व्यंजन के पूर्वस्वर पर अनुस्वार के प्रयोग से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस स्वर के अनुनासिक उच्चारण की ओर लेखकों का ध्यान उसी समय जा चुका था, जैसे वर्ल्यान, धाम, स्याम, ज्ञान। कभी कभी जहाँ अनुस्वार चाहिए वहाँ भी नहीं लगा मिलता है, जैसे नाँऊँ के स्थान पर नाऊ। ह्रस्व तथा दीर्घ ए ओ के लिये पृथक् लिपि चिह्न भारत की किसी भी प्राचीन वर्णमाला में नहीं मिलते। ऐ औ ब्रज में व्यवहृत होने वाले मूलस्वर तथा साधारण संयुक्त स्वर (अ+इ, अ+उ) दोनों ही के स्थान पर व्यवहृत हुये हैं। इन स्वरों के संबंध में यही ढंग छपी हुई पुस्तकों में भी चल रहा है।

ब्रजभाषा ग्रंथों की संपादन संबंधी कुछ कठिनाइयाँ

जिन्हें ब्रजभाषा ग्रंथों के संपादन करने या भिन्न भिन्न पोथियों के पाठों की तुलना करने का अवसर मिला है वे इस संबंध में कुछ कठिनाइयों से अवश्य परिचित होंगे। मुख्य कठिनाइयें तीन शीर्षकों में विभक्त की जा सकती हैं :—

१—अकारान्त शब्द कहीं अकारान्त मिलते हैं और कहीं उकारान्त, जैसे राम या रामु, काम या कामु, आसमान या आसमानु। इनमें कौन रूप ठीक माना जाय ?

२—शब्दों का एकारान्त व आकारान्त रूप शुद्ध माना जाय या ऐकारान्त व औकारान्त। उदाहरण के लिये लजानो या लजानौ, आयो या आयौ, को या कौ, नेक या नैक, हैं या हें, घरि कै या घरि के इत्यादि में कौन रूप शुद्ध है ?

३—अनेक शब्द निरनुनासिक और सानुनासिक दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं अतः इनमें कौन रूप मान्य होगा, जैसे कौं या कौ, नैंक या नैक, घरिकैं या घरिकै इत्यादि।

इन ऊपर के भेदों के मिश्रण से एक ही शब्द के विभिन्न रूपों की संख्या और भी अधिक बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये परसर्ग को के चार रूप मिल सकते हैं, को कों कौ कौं।

किन्हीं विशेष रूपों को विशुद्ध व्रज मान कर समस्त लेखकों की कृतियों में एकरूपता कर देना संपादन करना नहीं बल्कि ग्रंथों को अपने मतानुसार शोध देना होगा। व्रजभाषा के कुछ प्रकाशित ग्रंथों में इस नीति का अवलम्बन किया गया है। उदाहरण के लिए बिहारी रत्नाकर में अकारान्त के स्थान पर समस्त शब्द उकारान्त कर दिये गये हैं। यह सच है कि उकारान्त रूप अधिक ठेठ व्रज रूप हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं कि बिहारी या किसी विशेष कवि ने ठेठ रूप का ही प्रयोग किया हो। ग्रंथ के संपादन का उद्देश्य लेखक के मूलरूप को सुरक्षित करना है न कि

उसकी भाषा को किसी विशेष कसौटी के अनुसार परिवर्तन कर देना।

वास्तव में ऊपर बताए हुए तीन प्रकार के मुख्य पाठ भेद ब्रजभाषा की प्रादेशिकता की ओर संकेत करते हैं। विशेष भूमि भाग से सबंध रखने वाले लेखकों ने विशेष रूपों का प्रयोग किया है। कभी कभी एक ही लेखक की कृति की भिन्न भिन्न हस्तलिखित पोथियों में इस प्रकार का पाठ भेद मिलता है। इसका कारण पोथी-लेखकों की भाषा संबंधी प्रादेशिक प्रवृत्ति होती है। मूल लेखक-जिस प्रदेश विशेष का निवासी हो उस प्रदेश के आस पास लिखी गई *हस्तलिखित पोथियों को इस संबंध में अधिक प्रामाणिक* मानना उचित होगा। एक ही लेखक के शब्दों के व्यवहार में अनेक रूपता कभी कभी काल भेद के कारण हो सकती है लेकिन ऐसा बहुत कम पाया जाता है। एक ही भाषा के भिन्न भिन्न लेखकों में अनेक रूपता अधिक स्वाभाविक है और इसको नष्ट करना अस्वाभाविक होगा। सुदर्शन और प्रेमचन्द के खड़ी बोली रूपों में कहीं कहीं भेद हो सकता है—एक गए लिखता हो और दूसरा गये। ऐसी अवस्था में सुदर्शन की पुस्तकों में गए शुद्ध होगा और प्रेमचन्द की पुस्तकों में गये को शुद्ध मानना होगा।

यदि वर्तमान ब्रजभाषा की कसौटी पर कसा जाय तो ऊपर दी हुई प्राचीन साहित्यिक ब्रजभाषा की प्रवृत्तियों पर विशेष प्रकाश पड़ता है :—

(१) अकारान्त शब्दों को उकारान्त या इकारान्त करके

बोलने की प्रवृत्ति अलीगढ़ के चारों ओर के गाँवों में नियमित रूप से मिलती है। अन्य ज़िलों में भी गाँवों में जब तब मिल जाती है। ठेठ अवधी को तो यह विशेषता है। संभव है कुछ ब्रज कवियों ने इन ठेठ ग्रामीण रूपों का प्रयोग किया हो किन्तु साथ ही यह भी संभव है कि अनेक कवियों ने ब्रज शब्दों का नागरिक रूप ही अपनी रचनाओं में व्यवहृत किया हो। कवि के प्रदेश में लिखे गये प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की परीक्षा से कवि की लेखन शैली का पता चल सकता है। प्रत्येक अवस्था में कवि की लेखनशैली को सुरक्षित रखना संपादक का उद्देश्य होना चाहिये।

(२) -ए -ओ के स्थान पर विशेष अर्द्धविवृत उच्चारण -ऐं -ऑ मथुरा, आगरा, धौलपुर के प्रदेशों में तथा एटा और बुलन्दशहर के कुछ भागों में विशेष रूप से प्रचलित है। इन ध्वनियों के लिए पृथक् वर्णों के अभाव के कारण इन्हें प्रायः -ऐ -औ लिख दिया जाता था। अतः पूर्वी लेखकों की ब्रजभाषा में ए ओ अन्त्य वाले रूप और पश्चिमी ब्रज लेखकों में -ऐ।-औ अन्त्य वाले रूपों का मिलना अधिक स्वाभाविक है। वास्तव में इन दोनों प्रकार के रूपों को यथास्थान सुरक्षित रखना चाहिये। ऊपर दी हुई रीति से हस्तलिखित पोथियों के परीक्षण से इस संबंध में भी तथ्य का पता चल सकता है।

(३) अनुनासिकता की प्रवृत्ति बुन्देली तथा पूर्वी राजस्थानी में आती हुई ग्वालियर, आगरा, मथुरा व मैनपुरी तक आज कल भी फैली मिलती है अतः राजस्थान, बुंदेलखंड तथा पश्चिम

ब्रजप्रदेश के लेखकों में सानुनासिक रूपों का प्रयोग मिलना अधिक स्वाभाविक है। इसे आदर्श ब्रज-उच्चारण मानकर दास की रचनाओं में भी को को कौं, नैक को नैंकु, अधिकानि को अधिकानिं कर देना अनुचित होगा। यह भी सम्भव है कि किसी किसी अन्य प्रदेश के लेखक ने प्राचीन कवियों के अनुकरण में दूसरे प्रदेश के रूपों का प्रयोग अपनी रचना में किया हो। इसका पता भी हस्तलिखित पोथियों के परीक्षण से लग सकता है।

शब्दों के रूपों के अतिरिक्त नंददास, तुलसीदास, नरोत्तमदास, भिखारीदास आदि कुछ प्रसिद्ध ब्रजभाषा कवियों ने अनेक पूर्वी ब्रज (जैसे हो के स्थान पर हतो आदि) तथा अवधी के शब्दों (मेरा के स्थान मोरा आदि) का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। शोधने के स्थान पर इन्हें साहित्यिक ब्रज में मान्य समझ लेना ही उचित नीति होगी।

ब्रजभाषा व्याकरण

१—ध्वनि समूह

क—वर्गीकरण

ब्रजभाषा में पाई जाने वाली ध्वनियाँ खड़ीबोली अवधी आदि हिंदी की अन्य साहित्यिक भाषाओं की ध्वनियों से विशेष भिन्न नहीं हैं। नीचे ब्रजभाषा की ध्वनियों का वर्गीकरण दिया जाता है। ब्रजभाषा की विशेष ध्वनियों के नीचे आड़ी लकीर कर दी गई है।

स्वर

मूलस्वर—अ आ इ ई उ ऊ (ऋ)

<u>ऍ</u> (ॅ) ए <u>ऑ</u> (ॉ) ओ ऐ (ै) <u>औं</u> (ौ)

अनुनासिक स्वर—समस्त मूल स्वरों के अनुनासिक रूप भी व्यवहार में आते हैं।

संयुक्त स्वर—ह्रस्व तथा दीर्घ मूलस्वरों के प्रायः समस्त संभव संयुक्त रूप भी प्रयुक्त होते हैं।

व्यंजन

स्पर्श

कंठ्य	क्	ख्	ग्	घ्
तालव्य	च्	छ्	ज्	झ्
मूर्द्धन्य	ट्	ठ्	ड्	ढ्
दन्त्य	त्	थ्	द्	ध्
ओष्ठ्य	प्	फ्	ब्	भ्

अनुनासिक ङ् ञ् (ण्) न् म् ं (अनुस्वार)

अन्तस्थ य् र् ल् व् ड़् ढ़्

ऊष्म (श्) (ष्) स् ह् ः (विसर्ग)

स्व-स्वर

मूलस्वर अ आ इ ई उ ऊ ए ओ का उच्चारण ब्रजभाषा में हिन्दी की अन्य बोलियों के ही समान है अतः इनका विस्तृत विवेचन करना व्यर्थ होगा।

ऋ का व्यवहार लिखने में अक्सर मिल जाता है किन्तु इसका उच्चारण ब्रजभाषा में वैदिक स्वर ऋ के समान होता था इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। अनेक प्राचीन हस्तलिखित पोथियों में ऋ के स्थान पर बराबर रि लिखा मिलता है। यह इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि मूलस्वर ऋ का उच्चारण र्+इ=रि के समान हो गया था। हस्तलिखित पोथियों में ऋतु, कृपा, पृथिवी,

आदि शब्द प्रायः रितु, क्रिपा, प्रिथिवी आदि रूपों में लिखे पाए जाते हैं।

ब्रजभाषा में चार विशेष मूलस्वरों का होना सिद्ध होता है। ये ऍ ऑ ऐं औं हैं। विशेष लिपिचिह्नों के विद्यमान न होने से ऍ ऑ के स्थान पर क्रमसे ए ओ तथा ऐं औं के स्थान पर संयुक्त स्वरों के लिपिचिह्न ऐ (अइ) औ (अउ) लिख देते थे। किन्तु ए ओ ऐ औ लिपिचिह्नों में से प्रत्येक साधारण उच्चारण के अतिरिक्त एक भिन्न उच्चारण का भी द्योतक था यह बात छन्दोबद्ध अंशों पर ध्यान देने से स्पष्ट रीति से सिद्ध हो जाती है।

प्रायः संपूर्ण ब्रजसाहित्य पद्यात्मक है। कुछ छन्दों के प्रत्येक पाद में मात्राओं की संख्या निर्धारित रहती है। साधारणतया पादों में व्यवहृत शब्दों में आने वाले ए ओ ऐ औ दीर्घ अर्थात् दो मात्रा काल वाले होते हैं लेकिन ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं जहाँ इनको दीर्घ मानने से एक मात्रा बढ़ जाती है अर्थात् छन्दोभंग दोष आजाता है। अतः ऐसे स्थलों पर इन को ह्रस्व मानना अनिवार्य हो जाता है। इस पुस्तक में ऍ ॅ ऑ ॉ लिपिचिह्नों का प्रयोग ए ओ के ह्रस्व रूपों के लिये क्रम से किया गया है। दो ह्रस्वस्वरों के संयुक्त रूप का दीर्घ होना स्वाभाविक है किन्तु यदि किसी संयुक्त स्वर का उच्चारण एक मात्रा काल में हो तब उसको ह्रस्व मूलस्वर ही मानना होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार ह्रस्व ऐ (अइ) औ (अउ) को मूलस्वर मानना पड़ेगा। और इन स्वरों का उच्चारण अॅ ऑ से मिलता जुलता

हो जायगा। मथुरा, अलीगढ़ आदि केन्द्रों में ये विशेष ध्वनियें अब भी पाई जाती हैं। कुछ हस्तलिखित पोथियों में ऐ औ के स्थान पर अइ अउ लिखा मिलता है। यह इस बात का द्योतक है कि ऐ औ का प्रयोग कभी कभी कदाचित भिन्न उच्चारण वाले स्वरों के लिये किया जाता था। नीचे ब्रजभाषा की इन विशेष ध्वनियों के कुछ उदाहरण प्राचीन साहित्य से दिए गए हैं।

ऍ

सखा साथ के चमकि गये सब गहेउ श्याम कर धाइ; सूर श्याम मेरें आगे खेलत यौवन मद मतवारी (सूर० म० २), अवधेस कें द्वारें सकारें गई (कविता० १, १), फिरैं मिलि गोकुल गाँव कें ग्वारन (रसखा० १), अंगन तें जमें जोति कें कौंधे (जगत्० ३३)।

सूचना—ए से भेद दिखलाने के लिए, किन्तु ह्रस्व ए के लिपि-चिह्न के अभाव में, कभी कभी ऍ के स्थान पर य लिखा मिलता है, जैसे आय गई ग्वालिनि-त्यहि अवसर (सूर० म० ४)।

ऑ

अवर नहीं या ब्रज में कोऊ नन्दको आवत लहियो (सूर० म० १), सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजत भारी (रास० १, १०), पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं (कविता० १, ४), पाहन हौं तौ वही गिरि को (रसखा० १), सौयौ न सोइबो (सुजा० ४), सेद को भेद न कोउ कहै (जगत्० २६)।

सूचना—ह्रस्व ओ के लिपिचिह्न के अभाव में कभी कभी ऑ के स्थान पर व लिखा मिलता है, जैसे सुनि म्वहिं नन्द रिसात (सूर० म० १२)।

ऍ

हौं ल्याई तुमहीं पॅ पकरि के (सूर ० म० ५) , सुत गोद कॅ भूपति लै निकसे (कविता० १, १), जु पॅ कुंज कुटीरन देहुँ बुहारन (रसखा० २) अनोखियॅ लाग सु आँखिन लागी (सुजा० ४), जाहिरॅ जागत सी जमुना (जगत्० १३)।

ऑ

और कहौं कहाँ सूर श्याम के सब गुन कहत लजात (सूर० म० १), अवलोकि हौं सोच विमोचन को (कविता १, १), उनहीं को सुनै, न ऑ बैन (रसखा० ५), जासों नहीं ठहरै ठिक मान कौं (सुजा० २२), है धौं कहा को कहा गयो यों दिन (जगत्० २१)।

अ इ उ के ह्रस्व रूपों के समान देवनागरी लिपि में ह्रस्व ए ओ के लिये भी पृथक् लिपिचिह्न होने चाहिए । ग्रियर्सन महोदय ने भाषा सर्वे की जिल्दों में इन ध्वनियों के लिये ए॑ ओ॑ का प्रयोग किया है । उलटा ए अजब सा मालूम होने के कारण यहाँ इसके स्थान पर ए के नीचे परिचित लघु का चिह्न लगाना उचित समझा गया । शेष चिह्नों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है । ऍ ऑ के लिये या तो इस प्रकार के कोई नये लिपिचिह्न गढ़ने होंगे या ब्रजभाषा में इनके लिये ऐ औ का प्रयोग किया जा सकता है और संयुक्त स्वर ऐ औ के लिये दोनों स्वरों को अलग अलग अइ अउ लिख कर काम चलाया जा सकता है। जो हो इन नये मूल-स्वरों के लिये ब्रजभाषा के ग्रंथों में किसी निश्चित प्रणाली का अवलंबन करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

प्रत्येक मूलस्वर के अनुनासिक रूप भी पाये जाते हैं। नीचे अनुनासिक स्वर उदाहरण सहित दिए जा रहे हैं। इनमें से अधिकांश ध्वनियँ परिचित हैं:—

अँ	हँसत	(सूर० म० ४)।
आँ	तहाँ	(वार्ता० १, ५)।
इँ	सिँगार	(जगत्० ३, ११)
ईँ	गुसाईँ	(वार्ता० १२, १)।
उँ	चहुँ फेर	(जगत्० १, २)।
ऊँ	कबहूँ	(सूर० म० २)
एँ	बातेँ	(कविता० १, १७), सौंयेँ (सुजा० ४), चन्द्मुखी कहेँ (जगत्० ३२, १३१)।
ऍँ	बैँचन	(सूर० म० १)।
ओँ	तोसोँ	(कविता० ६, १२), ज्यौँही
	नितम्ब रयौँ	(जगत्० ५, २२)
ऑँ	बीचौँबीच	(वार्ता० १, ३)।
ऐँ	ठाढे हैँ	(कविता० २, १३), दौरैँ (जगत्० ८, ३४)।
औँ	कहौँ	(सूर० म० १), पैँ (कविता० ६, १२; जगत्० ७, २१)।

ब्रजभाषा में प्रायः प्रत्येक मूलस्वर के संयुक्त रूप व्यवहृत होते हैं। जैसे ऊपर बतलाया जा चुका है ऋ लृ कहने के लिये तो प्रायः

विशेष लिपिचिह्न ऐ औ का प्रयोग होता है शेष संयुक्तस्वर मूलस्वरों को लिख कर प्रकट किए जाते हैं। नीचे समस्त संयुक्त स्वर उदाहरण सहित दिये जा रहे हैं :—

ऐ [अइ]   ऐसो   [अइसो] (सूर० म० ७),
            वैठे   बइठे] (वार्ता० १, ६)।
अई   दई   (सत० ११), माधुरई (जगत्० ५, २०)।
औ [अउ] देखौ   [देखउ] (सूर० म० २), हुतौ [हुतउ] (वार्ता० १, ७)।
अए   सिखए (सत० १३)।
आइ   लरवाइ (सत० ७), बनाइ (जगत्० १, ४)।
आई   ल्याई (सूर० म० ५), चुराई (जगत्० ७,२८)
आउ   गाउ (सत० २१), दृग मिचाउनी (जगत्० १७—४७)।
आऊ   ढोटाऊ (सूर० म० १२)।
इए   किए   (सत० ४६)।
एउ   कर्देउ (सूर० म० ६)।
एइ   देइको (सत० ४४)।
एई   मेरेई (जगत्० ५५, ६२)।

एऊ	मरेऊ	(सत० ३३)।
ओउ	कौउ	(सूर० प० ६)।
ओइ	सोइ	(सत० १)।
ओई	ठाढ़ोई	(जगत्० २१, ६२)।
ओउ	कोउ	(सूर० प० १)।
ओऊ	कोऊ	(सत० ६१)।

संयुक्त स्वरों में से एक स्वर या दोनों स्वर अनुनासिक हो सकते हैं, जैसे :—

ऐ [अएँ]	मैंहैं	(कविता० २, २५), अनआपैं (सत० ३६)।
अईं	मईं	(सूर० प० १)।
औं [अऊँ]	हरौं	(कविता० ६, १३), पौं (जगत्० ६, २२)।
आईं	आईं	(सूर० प० २), सौंहिं (सत० ५१)
ओंइ	तहौंई	(जगत्० २३, १०१)।
ओंईं	गोंईं	(सत० १)।
ओंउ	दौंउ	(जगत्० २१, ६२)।
ओंउ	दुहाई खौंउँ	(जगत्० २१, ६२)।

ग—व्यंजन

व्रजभाषा के स्वर समूह में कुछ नवीन ध्वनियाँ अथवा विशेष संयुक्त रूप मिलते हैं किन्तु इस प्रकार की नवीनता या

विशेषता व्यंजनों के संबंध में नहीं पाई जाती। जैसा ऊपर दिए हुए व्यंजनों के वर्गीकरण पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो गया होगा ब्रजभाषा और खड़ीबोली के व्यंजनों में कहीं पर भी भेद नहीं है अतः इनके विस्तृत उदाहरण देना व्यर्थ होगा। किन्तु कुछ व्यंजनों के विशेष प्रयोगों की ओर नीचे ध्यान दिलाना हितकर होगा।

स्पर्श व्यंजनों के प्रयोग में किसी प्रकार की भी विशेषता नहीं है। ये शब्द के आदि तथा मध्य में प्रयुक्त होते हैं जैसे कोऊ (सूर० म० १), पाक (वार्ता० १, ६), इत्यादि। शब्द के अन्त में ये प्रायः नहीं आते हैं।

अनुनासिकों में ङ् ञ् केवल शब्द के मध्य में अपने वर्ग के व्यंजनों के पहले पाए जाते हैं, जैसे अनङ्ग (रसखा० १७), कुञ्ज (रसखा २)। ण् शब्द के मध्य में अपने वर्ग के व्यंजनों के पहले तथा दो स्वरों के मध्य में प्रयुक्त होता है, जैसे कुण्डल (सूर० य० ४), मणि कोठा (वार्ता० १४, १६) व्रजभाषा में साधारणतया तत्सम शब्दों के ण् के स्थान पर न् पाया जाता है। न् और म् अन्य स्पर्श व्यंजनों के समान प्रायः शब्द के आदि और मध्य में व्यवहृत होते हैं। अनुस्वार शुद्ध अनुस्वार को प्रकट करने के अतिरिक्त पंचवर्गों के अनुनासिक व्यंजनों तथा अनुनासिक स्वरों अर्थात् अर्द्धचन्द्र के स्थान पर भी प्रयुक्त होता है। अनुस्वार के प्रयोग की यह गड़बड़ी आधुनिक खड़ीबोली में भी ज्यों की त्यों मिलती है।

अन्तस्थों में य् र् ल् व् प्रायः शब्द के आदि और मध्य में प्रयुक्त होते हैं, जैसे यह (वार्ता० ४, २०) रहिगी (सूर० म० १) इत्यादि। ड़् और ढ़् केवल शब्द के मध्य में दो स्वरों के बीच में आते हैं, जैसे ठाढ़े (वार्ता० ३०, १७) पढ़ि (सूर० म० १४)। तत्सम शब्दों के य् और व् के स्थान पर ब्रजभाषा में क्रम से प्रायः ज् और ब् हो जाता है। इन दुहरी ध्वनियों का भेद प्रकट करने के लिये प्राचीन हस्तलिखित पोथियों में अक्सर य् के तत्सम उच्चारण के लिये य़् तथा व् के तत्सम उच्चारण के लिये ब़् लिखा मिलता है। बिना बिन्दी के ये अक्षर प्रायः ज् और ब् के द्योतक होते हैं।

ऊष्मों में श् ष् और विसर्ग प्रायः तत्सम शब्दों में पाए जाते हैं, जैसे दश (सूर० म० ४) षट रस (सूर० म० १६) अन्तःकरन (वार्ता० १४,१२)। श् साधारणतया स् लिखा और बोला जाता था, जैसे स्याम (सत० १२१)। ष् का उच्चारण ब्रजभाषा में मूर्द्धन्य था इस में अत्यन्त संदेह है। उच्चारण में इस को तालव्य श् कर देते होंगे। साधारणतया इस को स् में परिवर्तित कर देते थे, जैसे बिमलपद (वार्ता० ८, ११) हस्तलिखित पोथियों में र् के स्थान पर कहीं कहीं स् लिखा भी मिलता है जो इस बात का द्योतक है कि इसका उच्चारण ख् भी हो गया था। ख् के लिये ष् लिपिचिह्न का प्रयोग तो अक्सर मिलता है। ह् का प्रयोग ब्रजभाषा में खड़ीबोली के समान ही बहुत व्यापक है।

२—संज्ञा

व्रजभाषा की संज्ञाएँ नीचे लिखे अन्तवाली होती हैं :—

—अ, जैसे स्याम (सूर० म० २) बात (राम० २, १६) गाय (भाव० १, २६),

—आ, जैसे सखा (सूर० म० ६) राना (भक्त० ३८) बगुला (राज० ६, ७),

—इ, जैसे जोति (सत० ४०), सौति (रस० १२), कवि (काव्य० ७),

—ई, जैसे हाँसी (रास० १० ६), झोपड़ी सुदामा० ८८), स्वामी राम० १, ४३),

—उ, जैसे वेनु (हित० १५), मधु (रास० १, ६) बन्धु (सत० ६१),

—ऊ, जैसे प्रभू (वार्त्ता० १, ५), मदू (रसखा० ४३), बीछू (शिव० ६६),

—औ, जैसे तिनको (सूर० म० ७) डम्मो (वार्त्ता० २१ १८), हयो (कवित्त० १),

—औं, जैसे कौंदो (सूर० म० १५), साथी (वार्ता २१, १७), जौ (जगत० १२)।

क—लिंग

हिन्दी की अन्य बोलियों के समान ब्रजभाषा में भी केवल दो लिंग होते हैं—पुलिंग तथा स्त्रीलिंग। प्राणहीन वस्तुओं की द्योतक संज्ञायें भी इन्हीं दो लिंगों के अन्तर्गत रक्खी जाती हैं, जैसे मार पुलिंग (सूर० म० ५) चोटी स्त्रीलिङ्ग (राज० २, १७)।

विदेशी भाषाओं के लिङ्गहीन शब्दों का प्रयोग भी लिङ्गभेद के अनुसार किया जाता है, जैसे जिहाज पु० (वार्ता० १५,७) पत्रे स्त्री० (शिव० २०२)।

संज्ञा के लिङ्ग का बोध या तो विशेषण या कृदन्ती क्रियाओं के रूप से होता है, जैसे बड़ोमाट पु० (सूर० म० ५) साँकरी खोरी स्त्री० (सूर० म० १४) पाक सिद्धभयो पु० (वार्ता २,१२) नवधाभक्ति सिद्ध भयी स्त्री० (वार्ता ४, १२)।

कुछ संज्ञाओं के पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिंग में रूप भिन्न होते हैं, जैसे पुरुष (राज० ४, २२) स्त्री (राज० ५, ८) टिटौर, टिटिहरी (राज० ७४, ११) काग कागली (राज० ६६, १४) बरध (राज० ५८, १३) गाय (राज० १२, २२)।

प्राणियों की द्योतक संज्ञाओं में प्राणियों के लिंग के अनुरूप ही संज्ञाओं में लिंग भेद होता है, जैसे, राजा पु० (राज० २, २३), गाय स्त्री० (राज० १२,२२)।

छोटे छोटे जानवरों चिड़ियों तथा पतिंगों की द्योतक संज्ञाओं के पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग में से प्रायः एक ही रूप होता है क्योंकि इन

के संबंध में लिङ्ग की भावना स्पष्ट रूप से सामने नहीं आती, जैसे कछुआ, मूसा पु० (राज० ८, ८) मछरी स्त्री० (राज० १६५, १३)।

प्राणियों की द्योतक पुलिंग संज्ञाओं में प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग रूप बनाये जाते हैं :—

(क) अकारान्त संज्ञाओं में अ के स्थान पर इनि या इनी हो जाता है, जैसे ग्वाल (सूर० म० ३) ग्वालिनि (सूर० पू० ३३७,१), ग्वालिनी (सूर० म० १३) ;

(ख) आकारान्त संज्ञाओं में आ के स्थान पर ई हो जाती है, जैसे सखा सखी (सूर० म० १, २), लरिका लरिकी (सूर० म० १५) ;

(ग) ईकारान्त संज्ञाओं में ई के स्थान पर इनि हो जाती है, जैसे माली मालिनि ;

(घ) ओकारान्त तथा औकारान्त संज्ञाओं में ओ अथवा औ के स्थान पर ई हो जाता है। इनके उदाहरण विशेषणों में विशेष पाए जाते हैं।

सूचना—कुछ प्राणहीन वस्तुओं के भी द्योतक पुल्लिंग संज्ञाओं के स्त्रीलिंग रूप प्रत्यय लगाकर बनते हैं। ऐसे स्त्रीलिंग रूपों से छोटी वस्तु का भाव प्रकट किया जाता है।

ख—वचन

व्रजभाषा में दो वचन, एकवचन तथा बहुवचन, पाए जाते हैं। बहुवचन के चिह्न कारक-चिह्नों से पृथक् नहीं किए जा सकते इसलिए इनका विवेचन इस स्थल पर नहीं किया गया है।

आदरार्थ में विशेषण या क्रिया का बहुवचन का रूप एकवचन की संज्ञा के साथ तथा सर्वनाम के एकवचन के रूपों के स्थान पर बहुवचन के रूप स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहृत होते हैं।

ग—रूप-रचना

व्रजभाषा में संज्ञा के अधिक से अधिक चार रूप होते हैं:—
१—मूलरूप एकवचन, २—मूलरूप बहुवचन, ३—विकृतरूप एकवचन और ४—विकृतरूप बहुवचन।

मूलरूप एकवचन में मूल संज्ञा बिना किसी परिवर्तन के व्यवहृत होती है। अकारान्त संज्ञायें कभी कभी उकारान्त कर दी जाती हैं, जैसे पशु (सत० २६६), उसासु (सत० ३३४)।

मूलरूप एकवचन और बहुवचन में प्रायः भेद नहीं होता किन्तु ओकारान्त संज्ञाओं का मूलरूप बहुवचन ओ के स्थान पर ए कर के बनता है, जैसे काँटे (वार्त्ता० ७२, १८)। अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में प्रायः अ के स्थान पर एँ हो जाता है, जैसे कलोलैं (रास० ४, १,), लटैं (कविता० १, ५)। आकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में आ के स्थान पर प्रायः आँ हो जाता है, जैसे अँखियाँ (रसखा० १३) छतियाँ (माघ० २, ४)।

मूलरूप एकवचन तथा विकृत रूप एकवचन में साधारणतया भेद नहीं होता। कुछ पुल्लिंग आकारान्त संज्ञाओं का विकृत रूप एकवचन ओ के स्थान पर ए कर के बनाया जाता है, जैसे बारे तै

(सूर० म० १२)। संयोगात्मक विकृत रूपों से एकवचन नीचे लिखे प्रत्यय लगा कर बनाए जाते हैं :—

हिं जैसे पूतहिं (सूर० म० ८),
ऐ जैसे बाँमनैं (सुदामा० १२),
हि जैसे जियहि (सुजा० ५),
एँ ओ के स्थान पर जैसे हियैं (सत० १६४), सपनैं (सत० ११६),
ए ओ के स्थान पर जैसे हिये (सुदामा० ४),
इ जैसे जगति (भक्त० ३३)।

विकृत रूप बहुवचन की रचना के लिए नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते हैं :—

न जैसे छबिलिन (रास० ४, १४), तुरकान (शिव० २४)

सूचना—प्रत्यय लगाने के साथ अन्त्य स्वर यदि ह्रस्व हो तो प्रायः दीर्घ और यदि दीर्घ हो तो प्रायः ह्रस्व कर दिया जाता है। यदि संज्ञा इकारान्त या ईकारान्त हो तो प्रत्यय के पहले य भी बढ़ा दिया जाता है, जैसे सखियन (सुदामा० १००),

नि कटाछनि (कवित्त० १),
नु आँखिनु (सत० ४१),
न्ह बीथिन्ह (गीता० १, १)।

घ—रूपों का प्रयोग

संज्ञा के मूल रूपों का प्रयोग कर्ता तथा कर्म कारकों और सम्बोधन के लिये होता है :—

कर्ता—जैसे श्याम मेरे आगे खेलत (सूर० म० २), जैसे मात पिता जु करै सुत की रखवारी (रास० ४, २५), विद्या देति है नमता (राज० २, २३)।

कर्म—जैसे पौरे सब बासन घर के (सूर० म० ५), तब घोडा दोय मँगायै (वार्त्ता० ३८, २), एक लहै बहु सम्पति (काव्य० १, १०)।

सम्बोधन—जैसे कही सुदामा बाम सुनि (सुदामा० ८), राजकुमार हमैं नृप दीजै (राम० २, १५), अब अलि रही गुलाब मैं अपत कँटीली डार (सत० २५५)।

संज्ञा के विकृत रूप कर्ता के अतिरिक्त अन्य सब कारकों में परसर्गों के बिना तथा परसर्गों के साथ दोनों प्रकार से व्यवहृत होते हैं :—

परसर्ग सहित

एकवचन—जैसे देखौ महरि आपने सुत को (सूर म० २), गई है लरिकाई कढ़ि अंग ते (रस० २२), जोवन को आगमन (जगत० ६, २७)।

बहुवचन—जैसे जोगिन को जो दुर्लभ (रास० १, ७६), तब पौरियान नें कही (वार्त्ता० ३५, ३), चितवन रूखे दृगनु की (सत० २९), लतान में गुंजत भौंर (भाव० १, १८)।

परसर्ग रहित

एकवचन—जैसे कछु मामी हमकों दियो (सुदामा० ५०), घोड़ा मंगाय (वार्त्ता० ३६, ३), डरौं वाके डर (हित० ७), पत्रा ही तिथि पाइये (सत० ७३), पढ़े एक चटसार (सुदामा० २२)।

बहुवचन—सब सखियन लै संग (सुदामा० १००), जीति सकल तुरकान (शिवा० २४), सौंटिन मारि करौं पहुनाई (सूर० म० १७), छबिलिन अपनो छादन छूवि सुविछाय दयौ है (रास० ४, १४), पंछिपन कहो (राज० ६, ५), हाटनि बाटनि गलिन कहूँ कोउ चलि नहिं सकत (सूर० म० १५), बीथिन्ह (गीता० १, १), परे अंगुरीन जप छाला (कवित्त० २७)।

ऊपर निर्देश किया जा चुका है कि कुछ प्रयोग संयोगात्मक विकृत रूप एकवचन के भी मिलते हैं। ये प्राय कर्म तथा अधिकरण कारक के अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे

कर्म—पूतहिं भले पठावति (सूर० म० ८) नन्द के भौनहिं (रसखा० ८) छोड़ि गयो दुनियै (शिव० ५०) फिरि आवै घरै (रसखा० ४१), जियहि जिवाय (सुजा० ५);

अधिकरण—मनहि दियें (हित० ८) हियें (सत० ३४), नन्द के द्वारै (रसखा० १६) द्वारे (रसखा० ४), हिये (सुदामा० ४), जगति (भक्त० ३३)।

परिशिष्ट

संख्यावाचक विशेषण

नीचे कुछ संख्यावाचक विशेषणों के उदाहरण दिये जाते हैं :—

क—गणना वाचक

एक—(सूर० ६ ; राज० १, २), इक (सूर० य० १६) यक (सूर० म० ४),

द्वै—(सूर० य० २३ ; कविता० ६, ३ ; राज० ४, ६)

तीनि—(कविता० १, ७),

च्यारि—(कविता० १, ३ ; शिव० १, २),
चार (राज० १०, १६),

पाँच—(सूर० वि० १७; शिव० १, २),

छ—(कविता० ५, २७), छह (राज० ५, ६) ; षट (सूर० म० १६),

सात—सूर० वि० ८, कविता० ५, २७ सप्त (सूर० य० १२),

आठ

नौ—(कविता० १, ७), नव (सूर० म० १२),

दस—(कविता० १, ७), दश (सूर० म० ४),

सोरह—(सुदामा० ४४),

बीस—(कविता० ५, १६),

इक्कीस—(कविता० १, ७),

सत—(गीता० १, १०८ ; रास० ५, ५,)

हजार—(सूर० य० २५ ; सत० ६१, सुदामा० १०), सहस्र (सूर० य० १४ ; रास० ४, ५ ; सुदामा ४४);

लाख—(सूर० म० १२; सत० ६१),

कोटि—(सूर० य० ५ गीता० १, १०८ ; रास० ४, ५ ; कोरिक (सत० ६१),

ख—अन्य

साधारण विशेषणों के समान क्रम-संख्यावाचक विशेषणों में पुलिंग तथा स्त्रीलिंग के रूप भिन्न होते हैं। ओ-के स्थान पर -ई कर देने से स्त्रीलिंग रूप हो जाता है। विकृत रूप -ए अथवा -ऐ कर देने से होता है।

पहिलो (सूर० म० १३), पहिली (सूर० य० २३, राज० ३, १८)
पहिले (सूर० य० ३४, राम० १, १), पहलै (राज० १४, २५)।

दूजो (कविता० १, १६), दूजी (राज० ३, १६), दूजै (राज० १०, ३), बियो (कविता० ६, ५३)।

तीजी (राज० ३, २०), तीसरे (कविता० ५, ३०)।

चौथी (राज० ३, २१)।

पाँचवीं (राज० ३, २३)।

छठो (गीता० १, ५)।

आकृतिवाचक विशेषण -गुनो -गुनी लगा कर बनते हैं, जैसे चौगुनो (सुदामा० ८२), चौगुनी (कविता० ५, १६), सौगुनी (सुदामा० ८२)।

समुदायवाचक विशेषणों के कुछ रूप नीचे दिये जाते हैं, जैसे दोऊ (सूर० य० १६), दोउ (गीता० १, २३), उभै (हित० २५); तीन्यौ, तीनों (वार्त्ता० ११, २), तिहुँ (हित० २), चारों (राज० ४, १२), चार्‌यो (गीता० १, २६)।

३—सर्वनाम

क—पुरुषवाचक : उत्तमपुरुष

पुरुषवाचक उत्तमपुरुष सर्वनाम के निम्नलिखित मुख्य रूप व्रजभाषा में मिलते हैं :—

	एक०	बहु०
मूलरूप	हौं, हों, हुँ, मैं, मैं,	हम
विकृतरूप	मो, मौ	हम
कर्म-संप्रदान वैकल्पिक	मोहिं, मोहि	हमहिं, हमैं
सम्बन्ध (विशेषण)		
पुल्लिं० मूल०	मेरो, मेरौ	हमारो, हमारौ
पुल्लिं० विकृत०	मेरे	हमारे
स्त्री० मूल० विकृत०	मेरी	हमारी
पुल्लिं० स्त्री० मूल० विकृत०	मो, मौ	

एकवचन के मूल रूपों का प्रयोग कर्ता के लिये पाया जाता है ।

(१) इन रूपों में से हौं का प्रयोग प्राचीन व्रजभाषा में सब से अधिक मिलता है, जैसे हौं ले आई हौं (सूर० भ० ५), हौं रीझी (मत० ८), हौं विहारे पुत्रनि कौं...... ....निपुन करिहौं (राज० ७, ११) ।

सूचना—बिहारी में एक स्थल पर हौ कर्म-सम्प्रदान के लिये प्रयुक्त हुआ है—हौं इन वेन्दी बौन्द हों (सत० १६५)।

हौ रूप प्रायः निश्चयवाचक अव्यय हूँ के साथ पाया जाता है, जैसे हौ हूँ... ...कब......... तासु मद फेटिहौं (सुजा० १२), हौं हूँ तो कवीश्वर है राजते रहत हौं (जगत्० २, ६)।

(२) हों रूप सूर में कहीं कहीं किन्तु गोकुलनाथ में प्रायः मिलता है, जैसे जो जग और बियो हों पाऊँ (सूर० वि० १६), महाराज हों तो समस्त नाहीं (वार्ता० ४, ६)।

(३) हुं रूप केवल गोकुलनाथ में मिलता है। जैसे हुं तौ...... अडेल जात हों (वार्ता० २१, १)।

(४) मैं का प्रयोग हौं के लगभग बराबर ही मिलता है। दोनों ही प्रकार के रूप प्रायः एक ही लेखक में साथ साथ मिल जाते हैं, जैसे औरनि आनि जान मैं दीन्हे (सूर० म० २), मैं मुख माँगो मु देहु (राम० २, १६), मैं तेरौ विस्वास कैसें करौं (राज० १०, १)।

(५) मै सेनापति की तथा मैं गोकुलनाथ की कृतियों में कहीं कहीं मिल जाता है, जैसे मै तौ तुम निधन के धन करि पाये हौ (कवित्त० ?, ३२), मैं हू आवत हों (वार्ता० १५, ६)।

उत्तम पुरुष एकवचन के मूल रूपों में वास्तव में हौं और मैं मुख्य हैं। शेष रूप इन्हीं के रूपान्तर हैं। इनमें से कुछ तो लेख या छापे की भूल के कारण हो सकते हैं। मै को विशुद्ध ब्रजभाषा

रूप न मानना भूल है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है इसका प्रयोग अधिक नहीं तो हौं के बराबर अवश्य हुआ है।

बहुवचन के मूलरूप हम के कोई भी रूपान्तर नहीं मिलते। इसका प्रयोग बहुवचन में कर्ता के लिये होता है। प्राचीन ब्रजभाषा में उत्तमपुरुष बहुवचन का रूप एकवचन के रूपों की अपेक्षा कम व्यवहृत होता है, जैसे हम वै वास बसत यह नगरी (सूर० म० ६), हम तोको समझावेंगे (वार्ता० ४, ७), हम विद्या बेचत नाहीं (राज० ७, ५)।

उत्तमपुरुष के एकवचन का विकृत रूप (१) मो भिन्न-भिन्न परसर्गों के साथ कर्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों के अर्थ प्रकट करने के लिये प्रयुक्त होता है, जैसे सुनि मैया याके गुन मो सों (सूर० म० ८), बीचे मो सौं आइ कै (सत० ३१), मो हूँ तें जु न्यारी दाम रहैं सब काल में (काव्य० ७, २५)।

सूचना—अपवाद स्वरूप मो का प्रयोग कभी कभी परसर्ग के बिना कर्म-कारक के अर्थ में मिल जाता है, जैसे मो देखत सब हँसत परस्पर (सूर० वि० २८), मो मोहत है (रास० ४, २१)।

(२) मौ रूप बहुत कम पाया जाता है और साधारणतया केवल गोकुलनाथ में मिलता है, जैसे मौ कों लात मारि के जगायो (वार्ता० ३२, १२)।

(१) मो का प्रयोग सम्बन्ध कारक के अर्थ में अक्सर मिलता है। ऐसी अवस्था में इसके मूल रूप या विकृत रूप तथा पुल्लिंग

या स्त्रीलिंग के रूप भिन्न नहीं होते। उदाहरण, मो माया सोहत है (राम० ४ २६), तिन चरण धूरि मो मूरि सिर (भक्त० ८), मो मन हरत (कवित्त० ३४), मो संपति जदुपति सदा (सत० ६१), मथत मनोज सदा मो मन (सुजा० १२)।

(२) इस अर्थ में मो के स्थान पर कहीं कहीं मों रूप भी मिलता है किन्तु इसे अपवाद स्वरूप मानना चाहिए, जैसे नों आगे वह भेद कहौ धौं (सूर० य० २५)।

सूचना—संस्कृत तत्सम रूप मम का प्रयोग भी कुछ स्थलों में मिल जाता है लेकिन इसे व्रजभाषा रूप मानना उचित न होगा।

बहुवचन का विकृत रूप भी हम ही है। कर्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों के लिये प्रयुक्त होने पर इस में भी भिन्न-भिन्न परसर्ग लगाए जाते हैं, जैसे सूरदास हम को बिरमावत (सूर० य० ६), हम पै उमड़े हौ (भाव० ३, ५८)।

एक दो स्थलों पर हमहिं रूप का प्रयोग अपादान कारक में मिलता है, जैसे कौ पुनि हमहिं दुराव करोगी (सूर० य० २१)।

ऊपर के उदाहरणों से यह विदित होगा कि बहुवचन के रूपों का प्रयोग एकवचन के लिये भी होता था। आधुनिक व्रजभाषा में यह प्रवृत्ति अधिक बढ़ गई है।

कर्म-संप्रदान कारक के लिये अनेक वैकल्पिक रूप बिना परसर्ग के व्यवहृत होते हैं। इनमें से (१) मोहिं और (२) मोहि

का प्रयोग विशेष मिलता है, जैसे मूँठहि मोहिं लगावत चगरो (सूर० म० ६), मोहिं परतीनि न तिहारी (कवित्त० १६), सोई मोहि भवै (हित० १६)। छन्द आदि की आवश्यकता के कारण कुछ अन्य परिवर्तित रूप भी मिलते हैं। ये सोदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :—

म्हिं, जैसे मुनि म्हिं नन्द रिसात (सूर० म० १२)।

मोही, जैसे तरसावत हो मोही (कवित्त० १८)।

मोहीं, जैसे मोहीं करत कुचैन (मत० ४७)।

मुहिं, जैसे आवै फिरि मुहिं कहहिगी (काव्य० ११, ६७)।

कर्म-सम्प्रदान के वैकल्पिक बहुवचन के रूप एकवचन के रूपों की अपेक्षा कम पाए जाते हैं। इनमें मुख्य (१) हमहिं और (२) हमैं हैं। दूसरे रूप का प्रयोग बाद के लेखकों में विशेष मिलता है। उदाहरण, काल्हि हमहिं कैसे निदरति ही (सूर य० १५), द्वार गए कछु दैहै भलो हमैं (सुदा० २३), हमैं जानि परी (काव्य० ३०, ३१) हमैं के नीचे लिखे रूपान्तर कभी कभी मिल जाते हैं। इनमें से कुछ रूप लेख या छापे की भूल से भी सम्भव हैं। उदाहरण, हमैं जैसे हमैं·········न जानि परै (जगत् ६, २८), हमै जैसे हमै कछु का परी है (जगत् २४, १०४), हमें जैसे नादीजै हमें दुख (रस० ४१), अन्तिम रूप पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

संबंध पुल्लिंग एकवचन मूलरूप (१) मेरो सबसे अधिक व्यवहार में मिलता है, जैसे मेरो कन्हैया तनक सो (सूर० म० ७), मेरो जग कछु नाव (वार्ता ६, ३), मेरो मन तो सों नित आवत है मिलि मिलि

(काव्य० २६, २६)। (२) मेरौ रूप भी कभी कभी मिलता है, जैसे सब गुनी जन मेरौ जस गावत हैं (वार्ता० ८, १२), आज तौ मेरौ भाग जाग्यौ दीसतु है (राज० ६, १७)।

सूचना—अवधी रूप मोर अथवा मोरा कुछ स्थलों पर व्रजभाषा की कृतियों में पाए गए हैं। ये या तो पूर्वी लेखकों में मिलते हैं या पश्चिमी लेखकों में छन्दादि की आवश्यकता के कारण प्रयुक्त हुए हैं, जैसे जीवन धन मोर (सूर० म० ७)।

संबंध पुल्लिंग एकवचन विकृत रूप मेरे के कोई विशेष रूपान्तर नहीं हैं, जैसे सूर श्याम मेरे आगे खेलत (सूर० म० २), मेरे पुत्र गुनवान होंय तौ भलौ (राज० ५, १०)। अवधी रूप मोरे कभी कभी पूर्वी लेखकों की कृतियों में आ गया है, जैसे हुलसे तुलसी छवि सो मन मोरे (कविता० २, २६)।

संबंध स्त्रीलिंग एकवचन में मूल तथा विकृत रूप मेरी होता है, जैसे मेरी बात गई इन आगे (सूर० य० १८), अब मेरी प्रतीति क्यों न करै (राज० १०, ४)। पूर्वी लेखकों में मोरि रूप भी आगया है, लेकिन वास्तव में यह व्रजभाषा का रूप नहीं है।

सूचना—मो, मों तथा मम के संबंध कारक के समान प्रयोग के लिए देखिए पृष्ठ ६६-६७।

संबंध पुल्लिंग एकवचन में मूलरूप साधारणतया (१) हमारो है यद्यपि कभी कभी (२) हमारौ रूप का भी व्यवहार हुआ है। उदाहरण, नाम हमारो लेत (सूर० य० ६), तौ हमारौ कहा बसु है

(कवित्त० १८), ऐसोई अचल शिव साहब हमारो है (काव्य० २२ ४८), तौ हमरौ छूटनौं बनै (राज० १५, ६)।

मूल रूप हमारो का विकृत रूप हमारे है, जैसे तिन में मिलि गये चपल नयन पिया मीन हमारे (रास० १, १०५), ये तौ हमारे चाकर हुते (वार्ता० २४, १४), हमारे तौ कन्हैया है (जगत० २, ५)।

सूचना—हमार तथा हमारा रूप कभी कभी पूर्वी लेखकों में मिल जाते हैं लेकिन वास्तव में ये ब्रजभाषा के रूप नहीं हैं।

स्त्रीलिंग बहुवचन में मूल तथा विकृत रूप दोनों में हमारी रूप व्यवहृत होता है, जैसे क्यों न कही तुम नन्दसुवन सों विथा हमारी (रास० २, २२), अँखियाँ हमारी दई मारी (काव्य० ७, २५), कुछ स्थलों पर हमरी रूप भी मिलता है, जैसे कहँ यह हमरी प्रीति (रास० ३, ६)।

ख—पुरुष वाचक : मध्यम पुरुष

पुरुष वाचक मध्यम पुरुष सर्वनाम के लिये ब्रजभाषा में निम्नलिखित मुख्य रूप व्यवहृत हुए हैं :—

	एक०	बहु०
मूलरूप	तू, तूँ तैं, तें	तुम
विकृतरूप	तो	तुम
कर्म-सम्प्रदान वैकल्पिक	तोहिं, तोहि	तुम्हें, तुम्हिं

संबंध

पुल्लि० मूल०	तेरो, तेरौ	तुम्हारो, तिहारा
पुल्लि० विकृत०	तेरे	तुम्हारे, तिहारे
स्त्री० मूल० विकृत०	तेरी	तुम्हारी, तिहारी
पुल्लि० स्त्री० मूल० विकृत०	तव, तुव, तो	

एकवचन के मूलरूपों का प्रयोग कर्ता के लिये पाया जाता है।

(१) तू का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है, जैसे तू ल्याई वाको (सूर० म० २), तू नाय के दूर बैठ (वार्ता० २, ८), तू लै (राज० ६, १६)।

अव्यय ही के साथ तू कभी कभी (२) तु हो जाता है, जैसे तु ही एक ईठ (कवित्त० २०)।

(२) तूँ का व्यवहार १८ वीं शताब्दी के लेखकों में विशेष मिलता है, जैसे तूँ माथ के मूड चढै कित मौडी (रसखा० १३), तूँ तौ मेरी प्रान प्यारी (जगत्० १५, ६२)।

(३) तैं का प्रयोग प्रायः करण कारक के अर्थ मे होता है। यह रूप प्राचीन कवियों में अधिक पाया जाता है, जैसे अतिहि कृपिणि तैं है री (सूर० म० १०), तैं बहुतै निधि पाई (सूर० म० ११), तैं पायो (हित० १७), तैं कीन (सत० ४३)।

तें का रूपान्तर (४) तै कुछ स्थलों पर कदाचित् छापे की भूल के कारण हो गया है, जैसे तै ही पढाई (रस० ११)।

(४) तें का प्रयोग कुछ अधिक मिलता है, जैसे क्यों राखी तें (रास० ३, ४), मेरे तें ही सरवसु है (कवित्त० १८)।

एक दो स्थलों पर तै रूप परसर्ग ने के साथ मिलता है, जैसे तै ने श्री गुसाईं जी को अपराध कीयौ है (वार्ता० ४३, १)।

बहुवचन के मूलरूप तुम के कोई भी रूपान्तर नहीं पाए जाते, जैसे तुम कहाँ जाहु पराइ (सूर० म० २), तुम उपमा को देत हौ (वार्ता० ६, १२), तुम मेरे पुत्रनि कौं पण्डित करिवे जोग हौ (राज० ७, २०)।

सूचना—तुम के संबंध बहुवचन में प्रयोग के लिये दे० पृ० ७४।

मध्यम पुरुष का एकवचन विकृत रूप तो भिन्न भिन्न परसर्गों के साथ कर्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों में प्रयुक्त होता है, जैसे बकत बकत तो सों पचि हारी (सूर० म० १६), हम तो कों समझावेंगे (वार्ता० ४, ८), तो मैं दोनों देखियतु है (जगत्० ४, १८)।

सूचना—तो के सम्बन्ध एकवचन में प्रयोग के लिये दे० पृ० ७३।

मूलरूप के बहुवचन के समान मध्यमपुरुष सर्वनाम के विकृत रूप का बहुवचन भी तुम ही होता है। इसका प्रयोग भी परसर्गों के साथ कर्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों के लिये होता है, जैसे को हम तुम सों कहति रही ज्यों (सूर० म० २१), तुममें कछू अविद्या रही नाहीं (वार्ता० ७, १२), तुम तें कछु लेतु नाहीं (राज० ७, ६)।

कर्म-संप्रदान एकवचन में परसर्ग रहित तोहि और तोहि वैकल्पिक रूप बराबर मिलते हैं, जैसे तोहिं बड़ी दृपिणि मैं पाई (सूर० म० ११), सपन सुनावत तोहिं (शिव० ६३); तोहि लगो चक (रास० १४), तोहि तजि और कासों कहौं (कवित्त० २०)।

निश्चयार्थ में बिहारी में एक स्थल पर तोहीं रूप का प्रयोग हुआ है। उदाहरण, तोहीं निरमोही लग्यौ मो ही (सत० ३६)

तुजसो में एक स्थल पर तोहि का प्रयोग परसर्ग के साथ हुआ है। उदाहरण, कैहि भाँति कहाँ सजनी तोहि सों (कवित्त० २, २५)।

बहुवचन में कर्म-संप्रदान में अनेक वैकल्पिक रूप मिलते हैं। सबसे अधिक प्रयोग (१) तुम्हें का हुआ है और उससे कुछ कम (२) तुमहिं का, जैसे तुम्हें न हठैती (सुदा० १३); तुमहिं मिलें ब्रजराज (सूर० म० १७)। तुम्है, तुम्हें तथा तुमैं का व्यवहार बहुत कम पाया जाता है, जैसे दोस न कछू है तुम्है (जगत्० १५, ६२); परखति तुम्हें (रस० १०३); हमरो दरस तुमैं मयो (राम० १, ६२)।

संबंध पुल्लिंग एकवचन मूलरूप साधारणतया (१) तेरो है यद्यपि कुछ लेखकों ने (२) तेरौ का प्रयाग भी स्वतंत्रतापूर्वक किया है। उदाहरण, का तेरो मन श्याम हरेउ री (सूर० य० २४), जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे (सुजा० ६); तेरौ गान हू आछौ (वार्ता० ३०, ६), मैं तेरौ विस्वास कैसें करौं (राज० १०, १)।

सम्बन्ध एकवचन पुल्लिंग विकृत रूप तेरे तथा स्त्रीलिंग मूल तथा विकृत रूप तेरी के रूपान्तर नहीं होते, जैसे तेरे आगे चन्द्रमा कलकी सो लगतु है (सुजा० १०); तेरी गति लखि न परै (सूर० वि० १४)।

सूचना—सेनापति ने एक स्थल पर पूर्वी रूप तोरि का प्रयाग निश्चय सूचक उपसर्ग—यै के साथ किया है, जैसे तोरियै सुवास औैर वासु मैं वसाति है (कवित्त० २६)।

संस्कृत संबन्ध कारक (१) तव का प्रयोग कमी कमी मिलता है। तव के रूपान्तर (२) तुव तथा (३) तौ अधिक व्यवहृत होते हैं।

उदाहरण, या ते रूप एक टंक प लहै न तव जस को (शिष० ४८); कहू तुव ध्यान करै (कवित्त० ४४); मो मन तौ मन साथ (सत० ५७)।

संबंध पुल्लिंग बहुवचन में अनेक मूलरूप मिलते हैं किन्तु इनमें सबसे अधिक प्रयोग (१) तुम्हारौ और (२) तिहारौ का हुआ है। इनके रूपान्तर तुमारौ, तुम्हरौ तथा तिहारौ कम व्यवहृत हुए हैं। उदाहरण, ललित मधुर मृदु हास तुम्हारो प्रेमसदन पिय (रास० ३, २०); सुजस तिहारो मरो मुवननि (कविता० १, १६); तुमारौ अपराध श्रीनाथजी छमा करेंगे (वार्ता० ३६, ११); अरु तुम्हरौ यह रूप (रास० १, १००); लियैं तिहारौ नामु (सत० ११४)।

संबंध पुल्लिंग बहुवचन के विकृत रूपों में सबसे अधिक प्रयोग (१) तुम्हारे तथा (२) तिहारे का होता है, जैसे फिरि आई तुम्हारे दर (सूर म० २) करकमल तिहारे (राम० ३, १८)। तुम्हरे तथा तुमरे का प्रयोग कहीं कहीं मिलता है जैसे, अरु तुमरे करकमल (रास० १, १०३)।

इसी अर्थ में तुम का प्रयोग अनेक स्थलों पर पाया जाता है, जैसे वे तुम कारन आवें (सूर० य० १७), तुम ढिंग आई (रास० ३, २२)।

संबंध स्त्रीलिंग बहुवचन में मूल तथा विकृत रूपों में भेद नहीं होता। (१) तुम्हारी और (२) तिहारी रूपों का प्रयोग साथ साथ बराबर मिलता है, जैसे तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी (सूर० वि० १३)' तिन में पुनि ये गोपबधू प्रिय निपट तिहारी (रास० ३, २)। तुमरी रूप बहुत ही कम पाया जाता है, जैसे कहाँ तुमरी निठुराई (रास० ३, ६)।

ग—निश्चयवाचक : दूरवर्ती

निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनाम को पुरुषवाचक अन्यपुरुष से अलग नहीं किया जा सकता। इस सर्वनाम के कुछ रूपों का प्रयोग विशेषण तथा नित्य संबंधी के समान भी होता है। लिंग के कारण इसमें रूपान्तर नहीं होता। व्रजभाषा में निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनाम के निम्नलिखित मुख्य रूप मिलते हैं :—

	एकव०	बहुव०
मूलरूप	वह	वे, वै
विकृतरूप	वा	उन, विन
अन्यरूप	वाहि	

मूलरूप एकवचन के रूपों में वह का प्रयोग अन्य पुरुषवाचक तथा निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनाम के लिए समानरूप से होता है, जैसे कहा वह जानै रस (रास० ५, ७३), वह राजा होइ कि रंक (राम० ३, ३१), वह...कहनि लाग्यौ (राज० ६, २०)।

मूलरूप बहुवचन में (१) वे का प्रयोग सबसे अधिक होता है, जैसे स्नान को वे गई आतुर (सूर० म० १), वे कहेंगे तैसे करेंगे (वार्ता० २४, १७)। (२) वै रूप भी कभी कभी मिलता है लेकिन बहुत कम, जैसे हम वै बास बसत यक नगरी (सूर०, म० ६), दे० सत० ६२, गिय० ६६।

विकृत एकवचन में वा साधारणतया प्रयुक्त होता है, जैसे वा के बचन सुनत हैं बैठे (सूर० म० १), सो वाने कह्यौ (वार्ता ४६, ८)।

अपभ्रंश उहि का प्रयोग बहुत कम मिलता है, जैसे आजु उहि गोपी की न गोपी रही हाल कछु (काव्य० २८, २४)।

विकृत बहुवचन रूप उन साधारणतया प्रयुक्त हुआ है। उदा० भोजन करत तुष्टि घर उनके (सूर० वि० ११), तब तें उनके अनुराग छुटी (भाव० ३, ६७)।

(२) तिन प्रायः बाद के गद्य में पाया जाता है, जैसे आगे तिनके साथ चित्र ग्रीव हू उतर्यौ (राज० १२, १३)।

सूचना—विकृत बहुवचन के उन रूप का प्रयोग परसर्ग के बिना प्रायः करण कारक में भी कभी कभी हुआ है, जैसे उन नीके आराधे हरि (रास० २, ४२)।

कर्म-संप्रदान के अर्थ में परसर्गों के बिना कुछ रूपों का प्रयोग होता है। कभी कभी ये रूप अन्य कारकों के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं।

एकवचन के रूपों में वाहि का प्रयोग अन्य पुरुषवाचक के समान प्रायः मिलता है, जैसे वाहि लखैं लोइन लगै कौन जुवति की जोति (सत० १०१)।

अपभ्रंश उहिं या उहि का प्रयोग बहुत कम हुआ है, उदाहरण जैसे चलै लागि उहि गैल (सत० ७७), आपनो बैर बपू उहि लीनो (काव्य० ३, ८२)।

घ—निश्चयवाचक : निकटवर्त्ती

इस सर्वनाम के रूपों में भी लिंग के अनुसार भेद नहीं होता तथा इसके कुछ रूपों का प्रयोग विशेषण के समान भी होता है।

साहित्यिक व्रजभाषा में इस सर्वनाम के निम्नलिखित मुख्य रूप मिलते हैं :—

	एकव०	बहुव०
मूलरूप	यह	ये, ए
विकृतरूप	या	इन
कर्म-संप्रदान वैकल्पिक	याहि	इन्हैं

मूलरूप एकवचन में कोई भी रूपान्तर नहीं मिलते, जैसे सूर श्याम की चोरी के मिस देखन कों यह आई (सूर० म० ११), यह तौ भगवदीय है (वार्त्ता० ६, १६)।

सूचना—यही निश्चय सूचक रूप है, जैसे इक आइके आली सुनाई यहो (भाष० २, १४)।

मूलरूप बहुवचन के रूपों का प्रयोग आदरार्थ एकवचन के लिये प्रायः होता है। इन रूपों में (१) ये सबसे अधिक प्रयुक्त होता है, जैसे नन्दहु ते ये बड़े कहैंहैं (सूर० म० ६), ये दोऊ जगत में उच्च पद की देनवारी हैं (राज० ३, ४)।

कुछ लेखकों में ये के साथ साथ (२) ए रूप भी लिखा मिलता है, जैसे ए जो चलि आये (वार्त्ता० ४१, १५), ए तीर से चलत है (कवित्त० ४), ए छवि छाके नैन (सत० ६३)।

ऐ का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है, जैसे ऐ तीनौं माई छवि छाजै (व्रज० १५, १)।

विकृतरूप एकवचन या परसर्गों के साथ प्रथमा के अतिरिक्त

अन्य विभक्तियों में व्यवहृत हुआ है, जैसे सुनि मैया या के गुण मो मों (सूर० म० ८), या मैं संदेह नाहिं (राज० १६, २४)।

विकृतरूप बहुवचन (१) इन का प्रयोग भी प्रायः परसर्गों के साथ ही होता है, जैसे इन सों मैं करि गोप तवै (सूर० म० १०), इन तें बिगार कबहू न उपजै (राज० ११, २६)।

विशेषतया बिहारी में इन का प्रयोग कभी कभी परसर्गों के *बिना भी मिलता है*, जैसे इन सौंघी मुसकाइ (*सत० १२८*), नतरुक कत इन बिय लगत उपजत बिरह कृसानु (सत ११८), पै इन बाहि न चीन्हो (माध० ३, ८२)।

(२) इन्ह का प्रयोग बहुत कम स्थलों पर मिलता है, जैसे इन्ह के लिये खेलिबो छाँड्यौ (कृ० गीता० ४)।

कर्म-संप्रदान के वैकल्पिक एकवचन के रूपों का प्रयोग बहुत कम मिलता है, जैसे (१) झूठे दोष लगावति याहि (सूर० म० २), (२) इहिं पाप हीं बैराइ (सत० १६२)। इहि अथवा इहिं का प्रयोग संकेतवाचक (Demonstrative) विशेषण के समान भी होता है, जैसे तजत प्रान इहि बार (सत० १५), इहिं भरहरि चित लाउ (सत०)।

बहुवचन में कर्म-संप्रदान में अनेक वैकल्पिक रूप व्यवहृत होते हैं यद्यपि इनमें मुख्य रूप इन्हें है, जैसे तू जिन इन्हें पत्याइ (सत० ६६) अन्य रूपों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

इन्हें, जैसे आजु इन्हें जानी (सूर० य० १८), इन्हहिं, जैसे इन्हहिं बानि पर गृह की (कृ० गीता० ४), इन्है, जैसे जौ खेलैं तो इन्है सिखाऊं

(छत्र० २६, १६), इनहिं, जैसे इनहिं बिलोकि बिलोकियतु सौतिन के उर पीर (जगत्० ७, ३१), इनें, जैसे इनें किन पूछहु अनुसरि (रास० २, १३)।

ङ—संबंधवाचक

इस सर्वनाम के व्रजभाषा में निम्नलिखित रूप मिलते हैं :—

	एकव०	बहुव०
मूलरूप	जो	जे
विकृतरूप	जा	जिन
अन्य रूप	जाहि, जिह, जिहिं,	जिन्हैं, जिनहि,
	जेहि (जिहि), जासु	जिन्हें

मूलरूप एकवचन जो का प्रयोग बहुत होता है, जैसे सूर श्याम को जब जो भावै सोई तबहीं तू दे री (सूर० म० १०), जो प्रात ही व्याधि कौ देखि भाग्यौ हो (राज० १६, ६)।

छन्द की आवश्यकता के कारण कभी कभी जो का जु रूप भी कर दिया जाता है, जैसे भ्रू बिलसत जु बिभूत (रास० १, २७)।

मूलरूप बहुवचन जे के कोई भी रूपान्तर नहीं मिलते, जैसे जे संसार अँधियार अगर में मगन भये वर (रास० १, १७) जे चतुर है (राज० २, १४)।

विकृतरूप एकवचन के रूप जा का प्रयोग परसर्गों के साथ प्रथमा के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में किया जाता है, जैसे जा सों कीजै हेतु (सूर० वि० २२), जा कौं कछु लेनों होय तौ लेउ (वार्त्ता० १५, ७), जा के जन्मे तें कुल की मर्याद होय (राज० ४, ११)।

विकृतरूप बहुवचन में (१) जिन का प्रयोग अधिक मिलता है, जैसे जिनके प्रभु ब्योहारत (सूर० वि० ११), जिन ऊपर श्री ठाकुरजी नें ऐसो अनुग्रह है (वार्ता ५३, २१)।

ने के बिना जिन का प्रयोग करणकारक में कभी कभी मिलता है, जैसे कह्यो तिय को जिन दान दियो है (कवित्ता० २, २०)। जिननि का प्रयोग बहुत कम होता है, जैसे जिननि बड़े तीर्थनि में अति कठिन तप व्रत किये हैं (राज० ५, ४)।

जिन्ह का व्यवहार बहुत कम हुआ। यह प्रायः तुलसी की रचनाओं में ही मिलता है, जैसे जिन्ह के गुमान सदा सालिम संग्राम को (कविता० १, ६)।

परसर्गों के बिना अनेक संयोगात्मक रूपों का कुछ कुछ व्यवहार भिन्न भिन्न कारकों के लिये ब्रजभाषा में मिलता है। इनमें निम्नलिखित रूप मुख्य हैं।

(१) जाहि का प्रयोग कर्म संप्रदान के अर्थ में प्रायः होता है, जैसे जाहि बिरंचि उमापति नाप (हित० १७), जाहि शास्त्ररूपी नेत्र नाहीं सो आंधरो है (राज० ४, ६)।

(२) जिहि का प्रयोग कर्म, करण, अधिकरण आदि के अर्थों में मिलता है, जैसे सुरनर रीझत जिहि (राम० ५, २६), जिहि निरख नासें (रास० १, ६), जगत जनायौ जिहि सकलु (सत० ४१), प जिहिं रति (सत० ७१)।

(३) जिह संबंध कारक के अर्थ में व्यवहृत हुआ है, जैसे जिहि भीतर जगमगत निरन्तर कुँवर कन्हाई (रास० १, ६)।

(४) जेहि संबंध कारक के अर्थ में एक दो स्थलों पर मिलता है, जैसे जेहि वश परिमल मत्त चंचरीक चारण फिरत (राम० ३, १६)।

सूचना—जेहि तथा जिहि का प्रयोग कुछ स्थलों पर परसर्गों के साथ भी हुआ है, जैसे जिहि के वश अनिमिष अनेक गण (सूर० वि० १३); जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी (कविता० २, ५)।

(५) जासु (सं० यस्य) रूप भी कभी कभी संबधकारक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसे भाष्यौ जात न जासु जस (छत्र० ३, १)।

बहुवचन में कर्म संप्रदान के अर्थ में नीचे लिखे वैकल्पिक रूप पाए आते हैं :—

(१) जिन्हें का प्रयोग कुछ अधिक मिलता है, जैसे छाजै जिन्हें छत्रछाया (कविता०, १, ८), जानि परै न जिन्हें (काव्य० १०, ४१)।

(२) जिन्हें, जैसे जिन्हें भागवत धर्म बल (रास० ५, ७४)।

(३) जिनहि, जैसे जिनहि जान (भाव० १, ४)।

च–नित्यसंबंधी

नित्यसंबंधी सर्वनाम के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं :—

	एकव०	बहुव०
मूलरूप	सो	ते, से
विकृतरूप	ता	तिन
अन्यरूप	ताहि इत्यादि	तिन्हें

मूलरूप एकवचन में—साधारणतया सो प्रयुक्त होता है, जैसे सो कैसे कहि आवे जो ब्रज देविन गायो (रास० ५, २८), जाहि शास्त्र रूपी नेत्र

नाहीं सो आँधरो है (राज० ४, ६) । छन्द की आवश्यकता के कारण सो कभी कभी सु में परिवर्तित हो जाता है, जैसे दई दई सु कबूल (सत० ५१) ।

मूलरूप बहुवचन में ते का प्रयोग विशेष पाया जाता है, जैसे तेऊ उमगि तजइ मर्जादा (हित० ८), दे० छत्र० ४, ४; काव्य० १, २१; राज० २, १५ ।

सूचना—कवित्त० ६ में ते एकवचन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, उदा० अंगलता जे तुम लगाई तेई बिरह लगाई है ।

से का प्रयोग प्रायः तुलसी में नित्यसंबंधी के अर्थ में मिलता है, जैसे जे न ठगे धिक से (कविता० १, १) ।

विकृतरूप एकवचन में ता का प्रयोग हुआ है, जैसे ताहू के सैवें पीवे को कहा इती चतुराई (सूर० म० ११) ।

विकृतरूप बहुवचन तिन का प्रयोग नित्यसंबंधी के अर्थ में साधारणतया तथा अन्य पुरुषवाचक के अर्थ में कभी कभी हुआ है । उदा० तिन के हेत खंम ते प्रकटे (सूर० वि० १४), जिनके···तिनके (रास० २, ३), जिन कौ जस नहीं भयौ तिनकी माताओं ने केवल जनवे ही कौ दुःख पायौ है (राज० ५, २) ।

तिन्ह का प्रयोग विशेषतया तुलसी में नित्यसंबंधी के अर्थ में प्रायः मिलता है, जैसे तिन्ह के लेखे अगुन मुकुति कवनि (गीता० ३, ५), दे० काव्य० १०, ४१ ।

सूचना—विकृत बहुवचन के तिन रूप का प्रयोग परसर्गों के

बिना प्रायः करणकारक में भी कभी कभी हुआ है, जैसे तिन कहो (कविता० १, १६)।

निश्चयसंबंधी सर्वनाम के अन्य रूप निम्नलिखित हैं, इनमें ताहि का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है :—

(१) ताहि, जैसे बुद्धि करी तब जीतो ताहि (सूर० म० ३)।

(२) त्यहि, जैसे त्यहि हठि बाँधि पतालहि दीन्हो (सूर० वि० १४)।

(३) तेहि, जैसे तेहि भोजन श्रागि बिरंचि नै दीनो (सुदा० १५)।

(४) तिहि, जैसे तिहि वाच्यार्थ बखानहीं (काव्य० ४, ५), तिहि (करणकारक) ध्रुव पदवी पाई (सूर० ६०४, १४), अमृत पूरि तिह (संबंधकारक)मध्य (छिन० ४)।

(५) तिहिं, जैसे तिहिं पूछत ब्रजबाल (रास० २, ३७)।

(६) तस्य और (७) तासु का प्रयोग केवल संबंधकारक में हुआ है, जैसे तस्य पुत्र जो भोज मे (मंगल० २, २२), प्रेमानन्द मिलि तासु मन्द मुसिकन मधु बरसे (राम० १, ६)।

सूचना—तासु का प्रयोग कहीं कहीं परसर्ग के साथ भी मिलता है, जैसे नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै (राम० ३, ३१)।

बहुवचन में कर्म-संप्रदान के अर्थ में प्रयुक्त रूप निम्नलिखित हैं :—

(१) तिन्हे, जैसे तिन्हें कहा कोउ कहै (रास० १, ६२)।

(२) तिनहिं, जैसे तिनहिं लई बुलाय राधा (सूर० य० १)।

(३) तिनैं, जैसे कौन तिनैं दुख है (रास० ४४)।

छ—प्रश्न वाचक

प्रश्नवाचक सर्वनामों में वचन के अनुसार भेद नहीं होता है। कुछ रूपों का व्यवहार अचेतन पदार्थों के लिये सीमित है। इस सर्वनाम के निम्न लिखित मुख्य रूप मिलते हैं:—

मूलरूप कौन, को

विकृतरूप का, कौन

अन्य काहि, कौनै

केवल अचेतन पदार्थों के लिये

मूलरूप कहा

विकृतरूप काहे

(१) मूलरूप कौन का प्रयोग सबसे अधिक पाया जाता है जैसे तेरे मन को मही कौन हैं (सूर० भ० ७), कौन गुनै (सत० ६३) इसका प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक विकृत रूप में भी होता है।

कौनु कुछ थोड़े से लेखकों की कृतियों में मिलता है, जैसे एक संग रंग ताकी चरचा चलावै कौनु (कवित्त० १५), दे० सत० १३३। कवन भी बहुत कम प्रयुक्त हुआ है, जैसे कहो कान्ह ते कवन आहि जे दोउन तजही (रास० ४, २२)। सूचना—कवा कभी कभी प्रश्नवाचक विशेषण के समान भी आता है, जैसे ना जानौं छिन अंत कवन बुधि धरिहं प्रकासित (हित० २)।

(२) को का प्रयोग कौन के समान ही व्यापक है, जैसे अति

सुदेश कुसुम पाग उपमा को है (सूर० प० ७), को नाहीं उपजतु है (राज० ४, २० ।

कौन तथा कौन बहुत ही कम व्यवहृत हुये हैं, तथा प्रायः गोकुलनाथ तक ही सीमित है, जैसे श्री नाथ जी की सेवा कौन करत है (वार्त्ता० २० १४), तू कौन जो इन ब्राह्मणन को मारे (वार्त्ता० २४, २)

विकृत रूप परसर्गों के साथ भिन्न भिन्न कारकों में व्यवहृत होते हैं ।

विकृत रूपों में (१) का का व्यवहार सबसे अधिक होता है, जैसे तू ल्याई का को (सूर० म० २), का सौं कहौं (सन० ६३) ।

(२) कौन विकृतरूप के समान भी व्यवहृत होता है, जैसे कहौं कौन सों (सूर० वि० ११), हरै हरि कौन के (भाव० ३, ११) । निश्चय सूचक के अर्थ में कौने प्रयुक्त हुआ है, दे० सुदामा० २० ।

केहि प्रायः पूर्वी लेखकों की ब्रज भाषा में मिलता है, जैसे लरिका केहि भाति जिआइहौं जू (कविता० २, ६) । किहि बहुत ही कम प्रयुक्त हुआ है, जैसे मौन गहौं किहि भाति (जगद्० ७, ३०) ।

प्रश्नवाचक सर्वनाम में कुछ संयोगात्मक रूप भी मिलते हैं । इनका प्रयोग परसर्गों के बिना होता है किन्तु ये प्रायः बाद के लेखकों की कृतियों में अधिक पाये जाते हैं ।

(१) काहि का प्रयोग कर्म-संप्रदान के अर्थ में होता है, जैसे रावरे सुजस सम आजु काहि गुनियै (शिव० ५०), दे० भाव० ३, ५१ ; काव्य० ७, २५ ।

(२) कौने करण कारक के अर्थ में कहीं कहीं मिलता है, जैसे कहि कौने सचुपायो (हित० १)।

प्रश्न वाचक सर्वनाम के कुछ रूप केवल अचेतन पदार्थों के लिये प्रयुक्त होते हैं। मूलरूप में (१) कहा का प्रयोग सबसे अधिक पाया जाता है, जैसे मुख करि कहा कहौं (सूर० वि० २६), कहा जानियै कहा भयौ (वार्त्ता० ४०,२२), तहाँ न जानियै कहा होय (राज० ४, १२)।

प्रायः छन्द की आवश्यकता के कारण कह, काह तथा का रूप भी कहीं कहीं मिल जाते हैं, जैसे कह घट जैहै नाथ हरत दुख हमरे हिय के (रास० ३, ८), काह कहौं (जगत्० ७, ३०), कहिये तौ हमैं कछु का परी है (जगत्० १४, ६२)।

अचेतन पदार्थों के लिये प्रयुक्त प्रश्नवाचक सर्वनाम का विकृत रूप काहे परसर्गों के साथ मिलता है, जैसे माधव मोहिं काहे की लाज (सूर० वि० ३२), ये मेरौ जस काह को गावेंगे (वार्त्ता० ६, ७)। काहे रूपान्तर कुछ स्थलों पर आया है, जैसे सो विरहा के पद काहे को गावै (वार्त्ता० ४७, २)।

ज—अनिश्चय वाचक

अनिश्चय वाचक सर्वनाम में भी वचन के कारण भेद नहीं होता यद्यपि चेतन अथवा अचेतन वस्तुओं के लिये प्रयुक्त होने के अनुसार निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं —

चेतन पदार्थों के लिए

मूलरूप	कौऊ,	कोई
विकृतरूप	काहू	

अचेतन पदार्थों के लिए

कछू, कछुक

नीचे लिखे अन्य शब्द भी अनिश्चयवाचक सर्वनाम के समान प्रयुक्त होते हैं :—

मूलरूप एक, और, सब
विकृतरूप एकनि, औरन, सबन

चेतन पदार्थों के लिए प्रयुक्त मूलरूप (१) कोऊ का प्रयोग सब से अधिक होता है, जैसे कंत अनंत भरौ तिनि कोऊ (हित० ७), सो सब कोऊ जानत हुते (वार्त्ता० ४६, २१)

कोउ तथा कोउ रूपान्तर छन्द की आवश्यकता के कारण कहीं कहीं कर दिए जाते हैं, जैसे कोउ रमा भज लेहु (रसखा० ४) कहूँ कोउ चल नहिं सकत डराहिं। (सूर० म० १५)। (२) कोई तथा छन्द की आवश्यकता के कारण उसका रूपान्तर कोइ कम प्रयुक्त हुआ है, जैसे और सहाय न कोई (रास० ३, १६), या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ (सत० १२१)।

चेतन पदार्थों के लिए प्रयुक्त विकृतरूप काहू प्रायः परसर्गों के सहित प्रयुक्त होता है यद्यपि कभी कभी इनके बिना भी मिलता है, जैसे काहू के कुल नाहिं बिचारत (सूर० वि० ११), अरु जैसे काहू की चोटी काल गहै (राज० २, १६); रहौ कोउ काहू मनहि दियें (हित० ८), अरु काहू चढ़ायो न (राम० ३, ३४)।

काहु रूप कभी कभी छन्द की आवश्यकता के कारण हो,

जाता है, जैसे प्रीति न काहु कि कानि बिचारै (हित० २३)। काउ रूप एक दो स्थलों पर आया है, जैसे कहौ किनि काउ कछू (माध० ३, ६७)।

अचेतन पदार्थों के लिये सबसे अधिक प्रयोग (१) कछू का मिलता है। कछु रूपान्तर छन्द की आवश्यकता के कारण कुछ स्थलों पर हो जाता है तथा कभी कभी (२) कछुक रूप भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे कछू छवि कहत न आवै (रास० १, ३१), को जड़ को चैतन्य कछु न जानत विरही जन (रास० २, ६), हित हरिवंश कछुक जस गावै (हित० १७)।

अनिश्चय वाचक सर्वनाम के समान प्रयुक्त एक तथा और शब्दों के मूल और विकृत रूपों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) एक, जैसे एक कहै अवतार मनोज को (शिव० ७१), कभी कभी एक के रूपान्तर यक तथा एकै भी मिलते हैं, जैसे यक मंजन यक पान (भक० ३४), एकै लहैं बहु संपति केसव (काव्य० २, १०)। एकनि विकृतरूप बहुवचन है, जैसे एकनि को जस ही सों प्रयोजन (काव्य० २, १०),

(२) और का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है, जैसे जीम कहूं जिय और (जगत्० १३, ४७)। औरन विकृतरूप बहुवचन में मिलता है, जैसे औरन को कलु गो (कविता० ४, १)।

सब के भी अनेक रूप अनिश्चय वाचक सर्वनाम के समान प्रयुक्त होते हैं :—

सब रूप का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है, जैसे सबके मननि अगम्य (हित० २५), सब तिसमों मिलाप हूये (कवित्त० २१)। सबु रूप कुछ ही स्थलों पर मिलता है, जैसे ज्यौं आँखिनि सबु देखियै (सत० ४१)।

विकृतरूप सबन का प्रयोग परसर्गों के सहित तथा उनके बिना दोनों तरह से मिलता है, जैसे गोबिन्द प्रीति सबन की मानत (सूर० वि० १२), सबन लै लै उर लाई (रास० २ ५१), सबन ने इनकों आदर करके बैठायो (वार्ता० ४६, २२)।

सबनि रूप करण कारक में परसर्ग के बिना प्रयुक्त होता है, जैसे सबनि अपनपौ पायो। (सूर० वि० १७)।

सूचना—निश्चयार्थ के लिए मूलरूप में सबै तथा (६) विकृत रूपमें सबहिन का प्रयोग होता है, जैसे तब जान्यो ये न्हावि सबै (सूर० ५० १०), सबहिन के परसें (रास० १, ५६)

झ—निजवाचक

निजवाचक सर्वनाम या विशेषण के समान नीचे लिखे रूप प्रयुक्त होते हैं :—

मूल तथा विकृतरूप	आप,	आपु,	आपन
संबंध	आपनो,	आपने,	आपनि;
	अपनो	अपने,	अपनि;
	अपनौ;	अपनों;	

इनमें से अधिकांश के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

आप, जैसे आप आप तो सहिये (सूर० भ० ८),

आपु, जैसे आपु मई वेपाद (सत० ४८),
आपन, जैसे फल लोचन आपन तौ लहिहैं (कवित्ता० २, ३३),
आपने, जैसे आपने मन में बिचारे (वार्त्ता० ७, १),
आपनी, जैसे जहाँ बसे पति नहीं आपनी (सूर० म० ६)
अपनो, जैसे अपनो गाँव लेहु नँदरानी (सूर० म० ८),
अपनौ, जैसे अपनौ जनमारो खोवत हैं (वार्त्ता० १०, १४),
अपनों, जैसे अपनों वैभव बढ़ावनों है (वार्त्ता० २२, १५),
अपने, जैसे अपने घर को जाउ (रास० १, ६२),
अपनी, जैसे तजी जाति अपनी (सूर० वि० १६)।

ग—आदर वाचक

आदर वाचक सर्वनाम के लिए निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते हैं :—

मूल, तथा विकृत रूप	आप,	आपु,	आपुन	
संबंध कारक	रावरो,	रावरे,	रावरी,	राउरे

इन रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।—

आप, जैसे आप...... मति बोलौ (वार्त्ता० २२, १५),
आपु, जैसे आपु लगावति भौंर (सूर० म० ६)
आपुन, जैसे घनि सु जु आपुन लहिये (रास० २, १४),
रावरो, जैसे रावरो सुभाव (कविता० २,४),
रावरे, जैसे रावरे की (कवित्त० ३०),

रावरी, जैसे मैं उमिरि दराज राज रावरी चहत हौं (जगत्० २, ६),
राउरे, जैसे राउरे रंग रंगी अँखियान में (जगत्० १३, ५६),

ट–संयुक्त सर्वनाम

संबंध वाचक तथा अनिश्चय वाचक सर्वनामों के संयुक्त रूप भी प्रायः व्यवहृत हुए हैं। कभी कभी अन्य सर्वनामों के संयुक्त रूप भी प्रयुक्त होते हैं। संयुक्त सर्वनामों का व्यवहार व्रजभाषा में बहुत कम मिलता है। उदाहरण जैसे कछु अपराध (सूर० वि० ७), सब किनहूँ (रास० १, ४७)।

ठ–सर्वनाम मूलक विशेषण

निश्चय वाचक, संबंध वाचक, नित्य संबंधी तथा प्रश्न वाचक सर्वनामों के आधार पर विशेषण भी बनाए जाते हैं। ये प्रकार वाचक, परिमाण वाचक तथा संख्या वाचक होते हैं। सर्वनाम मूलक विशेषणों में लिंग के कारण विकार होता है तथा इनके विकृत रूप भी प्रायः भिन्न होते हैं। इन विशेषणों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

प्रकार वाचक

ऐसो, जैसे ऐसो ऊँचो (शिव० १६),
ऐसे, जैसे ऐसे हाल मेरे घर में कीन्हें (सूर० म० ५),
ऐसी, जैसे ऐसी समा (शिव० १५),
तैसो, जैसे तैसो फल (राज० १४, १६),
कैसो, जैसे कैसो धर्म (रास० १, १०२),
कैसे, जैसे कैसे चरित किये हरि अबहीं (सूर० म० ३)।

परिमाण वाचक

इती, जैसे इती छबि (शिव० ४०),
केती, जैसे विद्या केती-यो (कवित्त० २, ६)।

संख्या वाचक

एते, जैसे एते कोटि (सूर० वि० ७),
एती, जैसे एती बातें (कवित्त० २, २१);
जेते, जैसे बिरुधी तन जेते (राम० १, २४)
जेतिक, जैसे जेतिक द्रुम जात (राम० १, ३१),
जितेक, जैसे जितेक बातें (राज० २, १२);
तेते, जैसे तेते (राम० १, २४);
कैउक, जैसे कैउक वचन कहे नरम (राम० १, ८१),
केती, जैसे केती बातें (शिव० ५०)।

४—क्रिया

क—सहायक क्रिया

वर्तमान निश्चयार्थ

वर्तमान निश्चयार्थ में निम्नलिखित मुख्य रूप सहायक क्रिया अथवा मूल क्रिया के समान प्रयुक्त होते हैं :—

	एक०	बहु०
उत्तम पु०	हौं, हो, हूँ	हैं
मध्यम पु०	है	हो
प्रथम पु०	है	हैं

उत्तम पुरुष एकवचन के रूपों में (१) हौं का प्रयोग सब से अधिक मिलता है, जैसे मथुरा जाति हौं (सूर० म० १), कथा कहतु हौं (राज० ३, १२)। हौ रूप कदाचित् छापे की भूल से कहीं कहीं हो गया है तथा (२) हों और (३) हूँ वार्त्ताओं की व्रज में विशेष प्रयुक्त हुए हैं, जैसे हौ तौ हौ तिहारी चेरी (कवित्त० ३२), में हू आवत हों (वार्त्ता १५, ६) हूँ तौ मूखों हूँ (वार्त्ता० ३२, ३),

उत्तम पुरुष बहुवचन में हैं रूप ही सर्वमान्य है, जैसे यह तुम्हारे हीं कीये भोगत हैं (वार्त्ता० ३३, १४), देखे हैं अनेक ब्याह (कविता० १, १५)। कुछ स्थलों पर पूर्वी-रूप आहिं मिलता है लेकिन बहुत कम, जैसे हम आहिं(छत्र १६, २)।

मध्यम पुरुष एकवचन में है का प्रयोग बराबर हुआ है, जैसे तू है (सूर० म० ७), दई दई क्यौं करतु है (सत० ११)। संस्कृत तत्सम रूप असि बहुत कम प्रयुक्त हुआ है, जैसे कासि कासि पिय महा-बाहु यों बदति अकेली (रास० २, ४६)।

मध्यम पुरुष बहुवचन में हौ साधारणतया प्रयुक्त हुआ है, जैसे बहुत अचगरी करत फिरत हौ (सूर० म० २), मो सों बोलत हौ (वार्त्ता ४२, १८)। हौं तथा हो रूप कहीं ही कहीं मिलते हैं, जैसे तुम मोकों दरशन देत हौं (वार्त्ता० ४२ १८), न हो हमारे (सुजा० १८)। इनमें से प्रथम रूप कदाचित् लिखावट की अशुद्धि या अनुनासिक रूपों के प्रचुर प्रयोग के कारण है।

प्रथम पुरुष एकवचन का विशुद्ध व्रजभाषा रूप है है, जैसे आवत है दिन चारि (सूर० वि० ३२), वा ग्रंथ में ऐसे लिख्यो है (राज० २,१४)।

नीचे लिखे पूर्वोरूप प्रायः पूर्वी लेखकों की व्रजभाषा में कहीं कहीं मिल जाते हैं :—

अहै, जैसे यहि घाट तें थोरिक दूर अहै (कविता० २, ६), वार्तो अहै अनन्यथा (काव्य० १६, ३)

आहि, जैसे निपट ठगोरी आहि मन्द मुसकनि (रास० १, १०६), यहोई थँदेसो आहि (सुजा० १६)

आही, जैसे निपट निकट घट में जो अन्तर्जामी आही (रास० ६, ६६)।

प्रथम पुरुष बहुवचन के रूप में हैं के रूपान्तर नहीं मिलते, जैसे उरहन ले आवति हैं सिगरी (सूर० म० ६), मेरी जस गावत हैं (वार्ता० ८, १२)।

सूचना—एकवचन के अनुरूप अहैं तथा आहीं आदि पूर्वी रूपों का प्रयोग विशेष नहीं मिलता।

नीचे लिखे रूप यद्यपि रचना की दृष्टि से वर्तमान निश्चयार्थ हैं किन्तु इनका प्रयोग वर्तमान संभावनार्थ में होता है।

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	हौं, हौंउ, होहुँ	होहिं
मध्यम पुरुष		होहु
प्रथम पुरुष	होय, होई, होइ हौवै	होहिं,

इन रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

उत्तम पुरुष

हौं, जैसे पाहन हौं तो वही गिरि को (रसखा० १)।

हौंउं, जैसे तौ पवित्र हौंउं (राज० १८, २४),

होहुँ, जैसे हरि सों अब होहुँ कनावडो जाय कै (सुदामा० २३)।

प्रथम पुरुष

होय, जैसे देहादि के ऊपर आसक्ति न होय (वार्त्ता० ८, २०),

होई, जैसे जेहि यश होई (राम० ३, ७)

होइ, जैसे श्याम हरित दुति होइ (सत० १)।

भूत निश्चयार्थ

भूत निश्चयार्थ में संस्कृत धातु अस् से संबद्ध निम्नलिखित रूप समस्त पुरुषों में सहायक क्रिया अथवा भूत क्रिया के समान प्रयुक्त होते हैं :—

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिंग	हो; हौ, हुतो हुतौ हतो	हे, हुते हते
स्त्रीलिंग	ही हुती हती	हीं, हुतीं

पुल्लिंग एकवचन के रूपों में (१) हो का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है, जैसे घर घरेउ हो युगनि को (सूर० म० ५), मैं हो जान्यो (सत० ६४)।

(२) हौ प्रायः वार्त्ताओं तक सीमित है, जैसे कृष्णदास ने कुआ चनवायौ हौ (वार्त्ता० ४०, १६),

(३) हुतो का प्रयोग कुछ अधिक मिलता है, जैसे देनो हुतो सो दै चुके (सुदामा० ७४), आयो हुतो नियरे (रसखा० ४७),

(४) हुतौ कम प्रयुक्त हुआ है, जैसे महाराज की वाट देखत हुतौ (वार्त्ता० १५, १६), जो वन विहारी हुतौ (कवित्त० २५)

(५) हतो रूप २५२ वार्त्ता में हुतो के स्थान पर बराबर प्रयुक्त हुआ है, जैसे एक संग द्वारका जात हतो (अष्टछाप ६४, ३)

पुल्लिंग बहुवचन में (१) हे तथा (२) हुते दोनों रूप प्रयुक्त हुए हैं, जैसे ये परम मित्र हे (राज० ८, ५), महाप्रभू आप पाक करत हुते (वार्त्ता० २, ११)। २५२ वार्त्ता में (३) हुते के स्थान पर हते का प्रयोग प्रायः हुआ है, जैसे तब डेरा ते आवते हते (अष्टछाप ६६, २२)। खड़ी बोली रूप थे का प्रयोग दो एक स्थलों पर मिल जाता है, जैसे थाके थे विकल नैना (सुजान० ६)।

स्त्रीलिंग एकवचन में (१) ही तथा (२) हुती दोनों रूप बराबर प्रयुक्त हुए हैं, जैसे निदरति ही (सूर० म० १५), आई ही गाय दुहाइवे कों (माधव० १, २६), आली हौं गई ही (जगद्० २०, ८८); कामरी फटी सी हुती (सुदामा० ६५), एक वेश्या नृत्य करत हुती (वार्त्ता० २६, १७)। २५२ वार्त्ता में हुती के स्थान पर प्रायः हती प्रयुक्त हुआ है, जैसे दीखती हती (अष्टछाप ६६, २२)। यह रूप कभी कभी अन्य लेखकों में भी मिल जाता है, जैसे गुपित हती नृप की कुटिलाई (छत्र० ३६, ३)।

स्त्रीलिंग बहुवचन के विशेष रूप जैसे हीं हुतीं इत्यादि का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है।

संस्कृत धातु भू से संबद्ध निम्नलिखित रूप भूतनिश्चयार्थ के समान समस्त पुरुषों में सहायक क्रिया अथवा मूलक्रिया के समान प्रयुक्त हुए हैं :—

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिंग	मयो, मयौ; मो, मौ	मये
स्त्रीलिंग	मई	मईं

पुल्लिंग एकवचन के रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं। मौ का प्रयोग बहुत कम हुआ है। शेष रूप लगभग समान रूप में प्रयुक्त हुए हैं। मो प्रायः पूर्वी लेखकों ने प्रयुक्त किया है। उदाहरणः—

(१) मयो, जैसे रंकते राउ मयो तबहीं (सुदामा० ४१), (दे० रसरा० २६, कवित्त० १८),

(२) मयौ, जैसे सो पाक सिद्ध मयौ (वार्त्ता० २, १२), बूढ़े बाघ कौ आहार मयौ (राज० ६, ५),

(३) मो, जैसे अति प्रसन्न मो चित्त (सुदामा० ३१), दास मो जगत प्रान प्रान कौ बधिक (काव्य० २६, २८),

(४) मौ, जैसे निहाल नंदलाल मौ (रस० १५)

पुल्लिंग बहुवचन में मये का व्यवहार बराबर हुआ है, जैसे निकसि कुंज ठाढ़े मये (हित० ११), प्रसन्न मये (वार्त्ता० ६, २०)। एकवचन मो के अनुरूप मे रूप पूर्वी लेखकों में भी कदाचित् ही कहीं प्रयुक्त हुआ है।

स्त्रीलिंग एकवचन मई के रूपान्तर नहीं होते हैं, जैसे गति मति मई तनु पंग (सूर० म० ६), ये वृषमान किशोरी मई हैं (जगत्० ८, ३४)।

स्त्रीलिंग बहुवचन के मईं रूप का प्रयोग प्राय हुआ है, जैसे

बौरी भई बृज की बनिता (भाव० ३, ४५), अँखियाँ हमारी……भई मगन गोपाल में (काव्य० ७, २५)।

भविष्य निश्चयार्थ

भविष्य निश्चयार्थ में मूलक्रिया अथवा सहायक क्रिया के समान निम्नलिखित रूप प्रयुक्त हुए हैं :—

		एकवचन	बहुवचन
पुल्लिंग	उत्तम पुरुष	ह्वैहौं	ह्वैहैं
,,	मध्यम पुरुष	ह्वैहै	ह्वैहौ
,,	प्रथम पुरुष	ह्वैहै, होइहै; होयगो होयगौ	ह्वैहैं; होइगे, होउं होहिंगे, होंयगे
स्त्रीलिंग	प्रथमपुरुष	होयगी	ह्वैहैं

इन रूपों में से अधिकांश के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

पुल्लिंग उत्तम० एक०, जैसे ह्वैहौं न हँसाइ कै (कविता० २, ६),

पुल्लिंग मध्यम० बहु०, जैसे मुकुर होहुगे नैंक में (सत० ५६), ह्वैहौ लाल कबहिं बड़े (गीता० १, ८);

पुल्लिंग प्रथम० एक०, जैसे तुम को जवाब देत में दुःख होयगो (वार्त्ता० २४, ७), तुमनें कहा होयगौ (वार्त्ता ३५, २०), दरपुस्तनि ह्वैहै नृप मारी (छत्र० ७, १६), अब होइहै (गीता० १, ६);

पुल्लिंग प्रथम० बहु०, जैसे मो सम ह्वैहैं (काव्य० २, ८),

जानि लजौंहैं होहिंगे (काव्य० ४०, २०), तौ विद्यावान होंयगे (राज० ५, १८);

स्त्रीलिंग प्रथम० एक०, जैसे तिनके गुरु की कहा बात होयगी (वार्त्ता० २०, २);

स्त्रीलिंग प्रथम० बहु०, जैसे ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी (कविता० २, २८)।

वर्त्तमान आज्ञार्थ

वर्तमान आज्ञार्थ में मध्यम पुरुष बहुवचन में होहु तथा हूजै का प्रयोग मिलता है, जैसे देखहु होहु सनाथ (सुदामा० ९९,) हूजै कनावडो चार हजार लौं (सुदामा० २४)।

भूत संभावनार्थ

भूत संभावनार्थ में नीचे लिखे रूप प्रयुक्त होते हैं :—

	एक०	बहु०
पुल्लिंग (समस्त पुरुषों में)	होतो होतौ	होते
स्त्रीलिंग (समस्त पुरुषों में)	होती	होतीं

इन रूपों में से कुछ के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

पुल्लिंग एक०, जैसे जो हौं होतो घर (सुदामा० ९६), नैसुक मो में जो होतो सयान (भाव० ३, ४), श्री नाथ जी को सिंगार होतौ (वार्त्ता० १४, १८);

स्त्रीलिंग एक०, जैसे अजू होती जो पियारी (जगत्० १५, ६२)।

ख—कृदन्त

वर्त्तमान कालिक कृदन्त

ब्रजभाषा में पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दोनों में वर्त्तमान कालिक कृदन्त के रूप व्यंजनान्त धातुओं में (१) -अत तथा स्वरान्त धातुओं में (२) त लगा कर बनाए जाते हैं, जैसे सेवत (रास० १, २७), सुनत (भक्त० ३३) परत (द्रुम० १२, ६); जात (सत० १५), देत (वार्त्ता० ४२, २०)।

इन रूपों के अतिरिक्त पुल्लिंग में -अतु तथा स्त्रीलिंग में -अति या -ति लगाकर भी रूप बनते हैं और इनका प्रयोग भी काफ़ी मिलता है :—

(३)—अतु, जैसे न सुख लहियतु है (कविता० २, ४), मैन बस परियतु है (कवित्त १५), को हो जानतु (सत० ६४), जातु है (काव्य० ३२, ३६),

(४) -अति या -ति, जैसे यशोदा कहति (सूर० म० ६), यौं राजति कवरी (हित० २१), राम को रूप निहारति जानकी (कविता० १, १७)।

स्त्रीलिंग वर्त्तमान कालिक कृदन्त में (५) -ती लगाकर बने हुये रूप बहुत कम व्यवहृत होते हैं, जैसे मदमाती इतराती डोलति (सूर० म० ७), बोलती हौ (रस० ४७)।

संस्कृत वर्तमान कालिक कृदन्त के अनुरूप एक दो स्थलों पर (६)—अंति रूप भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे फल पतिन नहँ ऊरध फलति (राम० १, २६)।

भूतकालिक कृदन्त

व्रजभाषा में भूतकालिक कृदन्त के मुख्य रूप निम्नलिखित प्रत्यय लगा कर बनते हैं :—

	एक०	बहु०
पुल्लिंग	-ओ -औ,	-ए,
	-यो, -यौ	-ये, -यै
स्त्रीलिंग	-ई	-ईं

पुल्लिंग एक० में (१) -ओ अन्त वाले रूपों का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है, जैसे, दीनो, लीनो, कीनो (सुदामा० १५) मरो (कविता० १, १६), बखानो (काव्य २, ८),

(२) -औ तथा -औं अन्त वाले रूपों का प्रयोग बहुत कम मिलता है, जैसे भौ (रस० १५), कीनौ (व्रज० १०, ६); कीन्हौं (शिव० ३४);

(३) -यो अन्त वाले रूपों का प्रयोग भी -ओ अन्त वाले रूपों के समान ही बहुत अधिक हुआ है, जैसे बन गयो तेरी ओर (सूर० म० ६), सेन्यो (रास० १, ५२), कह्यो (कविता० १, १२), रच्यो (भाव० १, २), धर्‌यो (राज० १, ५),

(४) -यौ अन्तवाले रूपों का प्रयोग कुछ कम मिलता है, जैसे तैं पायौ (हित० १७), टूट्यौ (कविता० १, ११), हार्‌यौ (शिव० ५०), लग्यौ (भाव० २, १२), बिचार्‌यौ (राज० १, १६),

-एउ अन्तवाले रूपों का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है, जैसे घर घरेउ हो (सूर० म० ५)।

पुल्लिंग बहु० में (१) -ए अन्त वाले रूपों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है, जैसे हँसत चले (सूर० म० ४), पढे (सुदामा० २२), सुने (रसखा० १६), चले (सत० ७७), चढ़े (जगत्० ५, २२);

(२) -ये (३) -यै तथा -एँ अन्तवाले रूपों का प्रयोग बहुत कम मिलता है, जैसे गाढे करि लीन्हें (सूर० म० ५); बनाये (भाव० १, १०) ल्याये (जगत्० १४, ५६); आये (वार्त्ता० १, २), काटन लग्यै (छत्र० ६, २०), किये हैं (राज० १०, १३)।

स्त्रीलिंग एकवचन के ई अन्तवाले रूपों में विभिन्नता नहीं पाई जाती, जैसे गई (सूर० म० ४) चली (रास० १, १०) गई (वार्त्ता० ५, १४), बैठी (सत० ७८), सीखी (काव्य० ३, १२), कही (राज० ८, २५)।

स्त्रीलिंग एकवचन के ईं अन्तवाले रूपों का प्रयोग बहुत कम मिलता है, जैसे आईं ब्रजनारी (हित० २६) गिरीं (रसखा० १०), बनीं (सत० ४)।

पूर्वकालिक कृदन्त

पूर्वकालिक कृदन्त के अकारान्त या व्यंजनान्त धातुओं के रूप धातु में—इ लगाकर बनते हैं, जैसे करि (सूर० म० २), लरि (रास० १, ६८), निहारि (कविता० १, ७), बरनि (सत० ३), समुझि (काव्य० १, ५)।

ऊकारान्त धातुओं में पूर्वकालिक कृदन्त के चिह्न—इ के लगाने के साथ अन्त्य ऊ के स्थान पर व हो जाता है, जैसे छ्वै (रस० ३१), च्वै (कविता० ७, ११)।

व्यञ्जनान्त धातुओं में -इ के स्थान पर -ऊ लगाकर पूर्वकालिक कृदन्त बनाना ऐसा अपवाद है कि जिसके उदाहरण बहुत ही कम पाए जाते हैं, जैसे सिमट (रास० १, ८२)।

छन्द अथवा तुकान्त की आवश्यकता के कारण कभी कभी इ के स्थान पर ई या ऐं मिलता है, जैसे जाई (सूर० म० १०), आई (रास० १, १४), पुकारैं (सत० १८४)।

आकारान्त तथा ओकारान्त धातुओं के पूर्वकालिक कृदन्त के रूप इ के स्थान पर य लगाकर बनते हैं, जैसे माखन खाय (सूर० म० ४), गाय (रास० १, २३), खोय (रास० २, ५१)। आकारान्त धातुओं मे कभी कभी -इ लगाकर बने हुये रूप भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे धाइ (सूर० म० २७७, २), पाइ (रास० २, ३५)।

एकारान्त धातुओं में अन्त्य ए के स्थान पर पै करके पूर्वकालिक कृदन्त के रूप बनाए जाते हैं, जैसे ले (सूर० म० २), दै (रास० २, २८)।

ऐकारान्त धातुओ में धातु का मूलरूप बिना किसी प्रत्यय के पूर्वकालिक कृदन्त के समान प्रयुक्त होता है, जैसे चितै (सूर० म० ३, रास० २, ३४)।

हो सहायक क्रिया का साधारण पूर्वकालिक कृदन्त का रूप

है होता है, जैसे हौं तु प्रगट है नाची (द्वित० ७), देखिये कवित्ता० २, ११, सुदामा ११, राम० ३, ३४, सत० ५, काव्य १०, ४०, जगत्० २, ६। हो के होइ अथवा ह्वै पूर्वकालिक कृदन्ती रूपों के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, जैसे होइ (भक्त० ४१); सूर है कें ऐसो घिघियात काहे को है (वार्त्ता० ४, ५)।

कर् धातु का साधारण पूर्वकालिक कृदन्ती रूप करि होना चाहिए (दे० कवित्त० १) किन्तु र् के लोप के कारण कइ या कै रूप अधिक व्यवहृत हुआ है, देखिए राम० १, १, सत० २४। के, कैं कें, रूपों के उदाहरण भी मिलते हैं।

पूर्वकालिक कृदन्त बनाने के लिये क्रिया के साधारण पूर्वकालिक कृदन्ती रूप में कभी कभी कै, के कें, तथा कैं भी लगाए जाते हैं किन्तु इस तरह के संयुक्त पूर्वकालिक कृदन्ती रूपों का प्रयोग कम हुआ है, जैसे पकरि कै (सूर० म० ५), प्रभु सों निसाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं (कवित्ता० २, ८), करि कें (वार्त्ता० २, ८), नाचि कै (रसखा० १२)। इन चार रूपों में से कै का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है और इसके बाद के का स्थान आता है।

सूचना—दो एक स्थलों पर ब्रजभाषा में खड़ीबोली पूर्वकालिक कृदन्त का प्रयोग भी मिलता है, जैसे देखकर (अष्टछाप पृ० १४, पं० १३)।

ग—साधारण अथवा मूलकाल

वर्तमान निश्चयार्थ

ब्रजभाषा में वर्तमान निश्चयार्थ के लिये या तो वर्तमान-

कालिक कृदन्त के रूपों का प्रयोग होता है या धातु में कुछ प्रत्यय लगाकर रूप बनाये जाते हैं। वर्तमान कालिक कृदन्त के रूपों का वर्तमान निश्चयार्थ के लिये प्रयोग काफ़ी होता है, जैसे करत कान्ह ब्रज घरनि अचगरी (सूर० म० ६), मोहे मनु लेति (कवित्त० ३), सुदेस नर बसत (मत० ११७), बरनत कवि (रस० १८), करत प्रनाम (छत्र० २, १३), बालकनि कौ चित्त नाहीं लागतु (राज० ३, १३)।

वर्तमान निश्चयार्थ के रूप धातु में नीचे लिखे प्रत्यय लगा कर भी बनते हैं :—

	एकव०	बहुव०
उत्तम पुरुष	-औं, -ऊँ,-ओं	-अइँ, -एँ, -हिं
मध्यम पुरुष	-अहि	-औ, -ओ
प्रथम पुरुष	-ऐ, -ए, -य, -इ	-एँ, -एँ

उत्तम पुरुष एकवचन में (१) -औं व्यंजनान्त धातुओं में तथा (२) -ऊँ प्रायः स्वरान्त धातुओं में लगता है, जैसे कहौं एक बात (सूर० म० १७), फिरौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन (रसखा० १), जरौं विरहागिनि मैं (सुजा० ७); जो जग और नियो हों पाऊँ (सूर० वि० १६), हौं आऊँ (रस० २६), पै न पाऊँ कहौं आहि सो धौं (सुजा० २)। (३) -ओं तथा -औ प्रान्तवाले रूपों का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है। इनमें से दूसरा रूप कदाचित् छापे की भूल के कारण है। उदाहरण, सुनों तौ जानों (वार्ता० २८, २३); जानौ कित रमि रहे (कवित्त० १८)।

उत्तम पुरुष बहुवचन में (१) -अहिं, (२) -एँ तथा (३) -हि प्रत्यय लगते हैं, जैसे तुम कहौ तेसें करें (वार्त्ता० २३, ३), पर जांहि (मत० १२६)।

मध्यम पुरुष एकवचन के रूप बहुत कम मिलते हैं, जैसे सकहि तौ……(हित० ४)।

मध्यम पुरुष बहुवचन में (१) -औ तथा (२) -ओ अन्तवाले रूपों का प्रयोग काफ़ी मिलता है, जैसे रंचक तुम पै आवौ (रास० ३, २३), तुम जानौ (वार्त्ता० २४, १०); तुम कहा करौ (रस० ३८)।

प्रथम पुरुष एकवचन के रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

(१) -ऐ, जैसे अब बसै कौन यहाँ (सूर० म० ४), न रली करै अली (सत० १४), कुशल करै करतार तौ (जगत्० १६, ८३)।

(२) -ए, जैसे सूरदासजी काहू बिधि सों मिले तो भलौ (वार्त्ता० ८, ६)।

(३) -य, जैसे आप खाय सौ सब हम मानो (सूर० म० १४), होय रस० १४, राज० २, १७)।

(४) -इ, जैसे उज्जलु होइ (सत० १२१), तौ रस जाइ तु जाइ (सत० ११६)।

अन्तिम दो प्रत्यय प्रायः स्वरान्त धातुओं के साथ लगाए जाते हैं।

प्रथम पुरुष बहुवचन के रूपों में (१) -एँ अंतवाले रूपों का प्रयोग साधारणतया मिलता है किन्तु कुछ उदाहरण (२)-यँ

अन्तवाले रूपों के भी मिलते हैं। उदाहरण जो तुम सों कृष्णदास कहैं (वार्ता० २२, २१), आँखि मेरी अँसुवानी रहैं (रस० ५), कैसे रहैं प्रान (सुजा० १); हरि लीला गावैं (रास० ७६)।

सूचना १—ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि वर्तमान निश्चयार्थ के दो रूपों का प्रयोग स्वतन्त्रता पूर्वक वर्तमान संभावनार्थ के लिये भी होता है।

२—मध्यम पुरुष बहुवचन के वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों का प्रयोग वर्तमान आज्ञार्थ में भी होता है।

३—वर्तमान निश्चयार्थ के रूप भविष्य निश्चयार्थ के लिए भी कभी कभी प्रयुक्त होते हैं, जैसे सौंटिन मारि करौं पहुनाई (सूर० म० १७), पाप पुरातन भागै (राम० १, २०)।

भूत निश्चयार्थ

यह कृदन्ती काल है। भूतकालिक कृदन्त के रूपों का प्रयोग इस काल के लिये स्वतन्त्रता पूर्वक होता है; देखिये पृ० १०१-१०२।

भविष्य निश्चयार्थ

व्रजभाषा में ग तथा ह लगाकर बनाए हुए भविष्य निश्चयार्थ के रूपों का प्रयोग साथ साथ स्वतंत्रता पूर्वक मिलता है।

भविष्य निश्चयार्थ के ग लगाकर बनाए हुए रूपों में निम्न-लिखित प्रत्यय लगते हैं:—

पुल्लिंग

	एकव०	बहुव०
उत्तम पुरुष	-ऊँगो, -औंगो, -उंगौ	-एँगे

मध्यम पुरुष	-ऐगो, -यगो*	-औगे, -ओगे, -हुगे*
प्रथम पुरुष	-ऐगो, -एगो, -यगो, -यगो*	-एँगे, -हिंगे,* -ऐंगे, -यगे*

स्त्रीलिंग

उत्तम पुरुष	-औंगी -ओंगी	-अहिंगी
मध्यम पुरुष	-ऐगी	-अहुगी, -ओगी, -औगी
प्रथम पुरुष	-ऐगी, -अहिगी, -यगी*	-अहिंगी

सूचना—ऊपर के रूपो में * चिह्नयुक्त रूप प्राय: दीर्घस्वरान्त धातुओं के बाद प्रयुक्त होते हैं।

नीचे पुलिंग भविष्य निश्चयार्थ के रूपों के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं:—

उत्तम पुरुष एकवचन, जैसे हूँ तो चलूँगो (वार्त्ता० १६, ७), हों तो नीके जवाब देउंगो (वार्त्ता० २४, ६), कहौंगो (गीता० ५, ५)।

उत्तम पुरुष बहुवचन, जैसे हम तौ न राखेंगे (वार्त्ता० २४, १४)।

मध्यम पुरुष एक०, जैसे तू कहा जवाब देयगो (वार्त्ता० २४, ५);

मध्यम पुरुष बहु०, जैसे कहा लेहुगे (सत० ४६), करौगे (सुजा० ५) जाओगे (सुजा० १३);

प्रथम पुरुष एक०, जैसे टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन (कविता० १, १६), श्रवण कहा करैगो (वार्त्ता० ११, ४) हमारी सेठ……रीझेगो नाहीं (वार्त्ता० ३०, ११), होयगो (वार्त्ता० २४, ७)।

प्रथम पुरुष बहु०, जैसे वे कहेंगे तैसे करेंगे (वार्त्ता० २४, १८), हरि दारिद हरेंगे (सुदामा० ६), सोधु लेहिंगे साधु (काव्य० २, ७) होयगे (राज० ५, १८)।

स्त्रीलिंग भविष्य निश्चयार्थ के रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

उत्तम पुरुष एक०, जैसे अब मैं याहि जकरि बाँधौंगी (सूर० म० १७) आवोंगी (गीता० २, ३);

मध्यम पुरुष एक०, जैसे तू मन मैं न डरैगी (काव्य० १, ३५);

मध्यम पुरुष बहु०, जैसे तुम चलहुगी की नाहीं (सूर० य० २०), की पुनि हमहिं दुरात करोगी (सूर य० २१), करौगी बधाई (कवित्त० ५६);

प्रथम पुरुष एक०, जैसे तरनी तरैगी मेरी (कविता० २), तिनके गुर की कहा बात होयगी (वार्त्ता० २०, २), अबै फिरि मुहिं कहहिगी (काव्य० १५, ६७);

प्रथम पुरुष बहु०, जैसे नागरि नारि भले बूझहिंगी (सूर० भ्रमरगीत ५०)।

भविष्य निश्चयार्थ के ह लगाकर बनाए हुए रूपों में निम्नलिखित प्रत्यय लगते हैं। लिंग के कारण इनमें भेद नहीं होता है :—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	-इहौं, -इहों	-इहैं

मध्यम पुरुष	-इहै	-इहौ
प्रथम पुरुष	-इहै	-इहैं

इन रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं। दीर्घ स्वरान्त धातुओं में प्रत्यय लगाने के पूर्व अन्तिम स्वर ह्रस्व हो जाता है :—

उत्तम पुरुष एकवचन, जैसे तुमहिं विरद विनु करिहौं (सूर वि० २७), ह्वैहौं (कवित० २, ६), लैहौं (सुदामा० १४), करिहौं (राज० ७, ८); अब वृन्दावन बरनिहों (राम० १, २१)। यह अन्तिम रूप छापे की भूल से भी हो सकता है।

उत्तम पुरुष बहुवचन, जैसे करिहैं यह तन भसम (रास० १, १०८), सुख पाइहैं (कविता० २, २३), हम चलिहैं (राम० २, १७);

मध्यम पुरुष एकवचन, जैसे न रामदेव गाइहै (राम० १, १६);

मध्यम पुरुष बहुवचन, जैसे ऐसी कब करिहौ (सूर० वि० ३४), लखि रीझिहौ (सत० ८), सिराइहौ (कवित्त० १६) मारिहौ (सुजा० ५), करिहौ (राज० ६, ३)।

प्रथम पुरुष एकवचन, जैसे पति रहिहै भज त्यागे (सूर० म० ४), देखिहै छला छिगुनिया छोर (सत० १३०), रैहै (छत्र० ७, १५);

प्रथम पुरुष बहुवचन, जैसे क्यों कहिहैं ससि (रास० २, १८),

क्यों चलिहैं (कविता० २, १८), ह्वैहैं (रसखा० १३), छमिहैं (काव्य० १, ७)।

सूचना १—एकारान्त धातुओं में प्रत्यय का इकार कभी कभी लुप्त हो जाता है, जैसे ये मेरी मर्यादा लेहैं (सूर० य० ११), जो हँसि देहौ वीरा (सूर० वि २७), लेहैं (गीता० ८, ४)।

२—भविष्य निश्चयार्थ के ह प्रत्यय लगाने के पूर्व ह अन्त वाली धातुओं के ह का प्रायः लोप हो जाता है, जैसे की कैहौ वै जैसे हैं (सूर० य० २१)।

३—भविष्य निश्चयार्थ के मध्यम पुरुष के रूपों का प्रयोग कभी कभी भविष्य आज्ञार्थ में होता है। ऐसे प्रयोगों में प्रत्यय का ह प्रायः लुप्त हो जाता है, जैसे मेरे घर को द्वार सखी री तब लौं देखे रहियौ (सूर० म० १)।

वर्तमान आज्ञार्थ

वर्तमान आज्ञार्थ के मध्यम पुरुष के रूपों में निम्नलिखित प्रत्ययों का प्रयोग होता है :—

एकवचन	बहुवचन
-उ,-अ,-इ,-हि	-अहु,-हु,-औ, -ओ,-उ

वर्तमान आज्ञार्थ के एकवचन के रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

-उ, जैसे सुनु री ग्वारि (सूर० म० १७), चलु देखिय जाइ

(कविता० २२), सूरदास ऊपर आउ (वार्त्ता ७, ६), पीठ दे बैठु री (भाव० १, ३४), वार हजार लै देखु परिच्छा (सुदामा० १०) :

-अ, जैसे साधु सगति कर (हित० ६), गोरस बेंच री आज तूं (रसखा० १३),

-इ जैसे गुरु चरन गहि (हित० ४), दर्शन करि (वार्त्ता० ७, ७) अली जिय जानि (सत० १४) :

-हि, जैसे और ठोर तू जाहि (काव्य० ६४, ६१)।

साधारणतया दीर्घ स्वरान्त धातुओं में वर्तमान आज्ञार्थ के लिये प्रायः कोई भी प्रत्यय नहीं लगाया जाता, जैसे सोई तवही तु दै री (सूर० म० १०), रताइ लै (काव्य १३, ४८), तू लै (राज० ६, १६)

वर्तमान आज्ञार्थ के बहुवचन के रूपो के लिये व्यंजनान्त धातुओं में (१) -अहु तथा स्वरान्त धातुओं (२) -हु प्रायः लगता है, जैसे सुनहु वचन चतुर नागर के (सूर०म० ११), विलोकहु री सखि (कविता० २, १८) ; अपनो गाँव लेहु (सूर० म० ८), सरस ग्रंथ रचि देहु (जगत्० २, ७), द्वारिका जाहु (सुदामा० २६)।

व्यंजनान्त धातुओं में (३)-औ तथा स्वरान्त धातुओं में (४) -उ लगाकर वर्तमान आज्ञार्थ बनाने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे देखौ महरि आपने सुत को (सूर० म० २), वदौ (कविता० १, ६), भगवद जस वर्णन करौ (वार्त्ता० ३, १) ; अपने घो जाउ (रास० १, ६२)।

खड़ीबोली के समान (४)-ओ अन्तवाले रूपों का प्रयोग भी ब्रजभाषा में बराबर मिलता है, जैसे कहो तुम (रास० २, २०), बैठो (सुदा० ६)। सदा रहो अनुकूल (जगत्० १, १), श्रवण सुनो तिनकी कथा (भक्त० २६)।

भूत संभावनार्थ

भूत संभावनार्थ के लिये धातु में निम्नलिखित प्रत्यय लगाए जाते हैं। स्वरान्त धातुओं में प्रत्ययों का अ- लुप्त हो जाता है :—

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिंग (समस्त पुरुषों में)	-अतो अतो	--अते
स्त्रीलिंग (समस्त पुरुषों में)	-अती	-अतीं

भूत संभावनार्थ के कुछ रूपों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

पुल्लिंग एकवचन (१) -अतो, जैसे कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट (सुदामा० १३), मिलतो न आवतो (वार्त्ता० ११, १०); (२)-अतौ, जैसे श्रीनाथ जी को सिंगार होतौ (वार्त्ता० १४, १६);

पुल्लिंग बहुवचन -अते, जैसे ता समय सूरदास जी कीर्तन करते (वार्त्ता० १४, २०);

स्त्रीलिंग एकवचन -अती, जैसे हौं हरती (सुदामा० १३)।

घ—संयुक्त काल

ब्रजभाषा में प्रायः चार प्रकार के संयुक्त काल के रूप मिलते हैं :—

१—वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ।
२—भूत अपूर्ण निश्चयार्थ।
३—वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ।
४—भूत पूर्ण निश्चयार्थ।

सूचना—खड़ीबोली के अनुरूप आधुनिक ब्रजभाषा में कभी कभी कुछ अन्य संयुक्तकालों का प्रयोग भी हो जाता है किन्तु विशुद्ध बोली में ऐसे उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं। साधारणतया इनके स्थान पर मूल कालों का ही प्रयोग किया जाता है।

वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ

वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ के रूप वर्तमान कालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों के संयोग से बनते हैं। इस काल का प्रयोग ब्रजभाषा में स्वतन्त्रतापूर्वक मिलता है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

उत्तम पु० एक०, जैसे मथुरा जाति हौं (सूर० म० १), कहति हौं (सुदामा० १३), बरनत हौं (राम० १, २१), कछू काची ना कहत हौं (जगत्० २, ६),

उत्तम पु० बहु०, जैसे वाके वचन सुनत हैं (सूर० म० १), जानत हैं हम (रास० ३, २४);

मध्यम पु० एक०, जैसे तातो कहा अब देती है सिच्छा (सुदामा० १०),

मध्यम पु० बहु०, जैसे जानत हो (सूर० म० २६), छोडत हौ नृप सत्य (राम० २, २२), कबहू न आवत हो (कवित्त० १७) ;

प्रथम पु० एक०, जैसे लागत है ताते जु पीतपट (हित० १४), सालति हैं नट सालसी (सत० ६), कवि पदमाकर देत है……असीस (जगत्० १, ४)।

प्रथम पु० बहु०, जैसे उरहन लै आवति हैं सिगरी (सूर० म० ६), राजत हैं (कवित्त० २, १५), व धर्म करतु हैं (राज० २, १७)।

भूत अपूर्ण निश्चयार्थ

भूत अपूर्ण निश्चयार्थ के रूप वर्तमान कालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया के भूत निश्चयार्थ के रूपों के संयोग से बनते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

उत्तम पु० एक०, जैसे हौं मुख हेरति हो कन की (माध० १, २१) ;

प्रथम पु० एक०, जैसे कान्हि हमहिं कैसे निदरति ही (सूर० म० १५), बसत हो (सुदामा० ४) का हो जानतु (सत० ६४) ;

प्रथम पु० बहु०, जैसे आप पाक करत हुत (वार्त्ता० २, ११), गावत हुतीं (वार्त्ता० २६, १७)।

वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ

वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ के रूप भूतकालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों के संयोग से बनते हैं। उदाहरण :—

उत्तम पु० एक०, जैसे एक तौ मैं प्रात स्नान करि दावा होय बैठ्यौ हौं (राज० १०, २), आयौ हौं (राज० १६, १५) ;

उत्तम पु० बहु०, जैसे हम पढ़े एक माथ हैं (सुदामा० ६) ;

मध्यम पु० बहु०, जैसे आजु कछु औरै छबि छाये हौ (जगद्० १४, ५६) ;

प्रथम पु० एक०, जैसे परमानन्द भयौ है (रास० १४), जिनको विधि दीन्ही है टूटी सी छानी (सुदामा० १४), तज्यो है (रास० २, २१), बढ़्यो है (कवित्त० २२), गई है (रस० २२) ;

प्रथम पु० बहु०, जैसे दधि माखन द्वै माट भरे हैं (सूर० म० १), मुकुट धरे माथ हैं (सुदामा० ६), थके हैं (सुजा० ११), किये हैं (राज० ५, ५) ।

भूत पूर्ण निश्चयार्थ

भूत पूर्ण निश्चयार्थ के रूप भूतकालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया के भूत निश्चयार्थ के रूपों के संयोग से बनते हैं । उदाहरण :—

उत्तम पु० एक०, जैसे आजु गई हुती भोरहिं हौं (रसखा० ८), मैं हो जान्यौ (सत० ६४), आली हौं गई ही आजु (जगत्० २०, ८८) ;

प्रथम पु० एक०, जैसे घर घरेउ हो गुननि को। (सूर० म० ५), भई हुती (वार्त्ता० १६, ६), आई ही (माघ० १, २६) ;

प्रथम पु० बहु०, जैसे पन्द्रह दिन भये हुते (वार्त्ता० १६, ६), याके ये बिकल नैना (सुजा० ६) विश्राम लेतु हे (राज० ८, १३) ।

ङ–क्रियार्थक संज्ञा या भाववाचक संज्ञा

व्रजभाषा में दो प्रकार के क्रियार्थक संज्ञा या भाववाचक संज्ञा के रूप मिलते हैं, एक तो व वाले और दूसरे न वाले। इन दोनों में मूलरूप तथा विकृत रूप होते हैं।

न वाली क्रियार्थक संज्ञा का मूलरूप व्यंजनान्त धातुओं में -अनो या -अनौं तथा स्वरान्त धातुओं में -नो या -नौं लगा कर बनता है, जैसे चलनो अब केतिक (कविता० २, ११), रूठनो (सुजा० २२)। शास्त्र संग्रह करनौं (राज० ३, ६); जाकों कछु लेनौं होय (वार्त्ता० १५, ७)।

सूचना—छन्द की आवश्यकता के कारण कभी कभी विकृत रूपों का प्रयोग मूलरूपों के स्थान पर किया गया है, जैसे हरि की सी सब चलन बिलोकन (रास० २, २६), दे० आवनि (रास० २, २७) गुपाल की गावनि (भाव० १, १६)।

व वाली क्रियार्थक संज्ञा का मूलरूप साधारणतया -इवो लग कर बनता है किन्तु कुछ उदाहरणों में -इबो, इबौं -इवौ, -इवै भी पाए गए हैं, जैसे मरिवो (सूर० य० २२) राग रागिनी सम जिनको बोलिवो सुहायो (रास० ४, २८), जाको देखिबो कठिन (कवित्त० ३६), मेघ गर्जिवो न (शिव० ८१); रहिवौं छोड़ दीयो (वार्त्ता० २५, १२); नरिवो मई अमीन (सत० ११०); विचार करि कहिवौ अस करिवौ (राज० ११, २५), बूमिवे है (सुजा० ६)।

न वाली क्रियार्थक संज्ञा का विकृत रूप व्यंजनान्त धातुओं में

-अन तथा स्वरान्त धातुओं में -न लग कर बनता है, जैसे सम दूर करन हित (राम० १, ३४), कारन को (कविता० १, २०), बिछुरन कौ (सत० १५); घर घर कान्ह खान को डोलत (सूर० म० १०), लैन (सत० १४४)।

सूचना—छन्द की आवश्यकता के कारण एक दो स्थानों पर -न व्यंजनान्त धातुओं के साथ भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे कर्न लागि (राम० ३, ५)।

व वाली क्रियार्थक संज्ञा का विकृत रूप प्रायः -इबे लगा कर बनता है किन्तु कुछ उदाहरण -इबे तथा -अबे के भी मिलते हैं, जैसे तब ही तें मेरे पाछे काढ़िबे को परी है (सुदामा० ७५), सरिता तरिबे कहँ (कविता० २, ५), देखिबे को (कवित्त० १५), आइबे को (शिव० ६६); सुनिबे को (रसख़ा० २६), देखिबे कों (जगत्० ८, ३४); पढ़बे कौं (राज० २, ८)।

सूचना—१ कभी कभी आकारान्त धातुओं में मूल अथवा विकृत रूप के प्रत्यय लगाने के पूर्व अन्त्य आ ह्रस्व कर दिया जाता है, जैसे ताहू के खैबे पीबे को कहा इती चतुराई (सूर० म० ११), छूटो पैबो जैबो (कवित्त० २१)।

२—प्रत्ययों की इ कुछ स्थलों पर य में परिवर्तित मिलती है, जैसे खायबे को (वार्ता० ३१, ६),

३—कुछ उदाहरण असाधारण रूपों के भी मिलते हैं, जैसे देखिबो को (कवित्त० १३), दीबे को (कवित्त० ३६)।

कुछ उदाहरणों में, विशेषतया सतसई में, धातु में -प, -पैं या-पै लगाकर विकृतरूप बनते हैं। इस तरह के रूपों का प्रयोग केवल करण कारक परसर्गों के बिना हुआ है, जैसे तेरे दृग देपै मेरो मनु न अघात है (कवित्त० १), जा तन की झाईं परैं (सत० १), दे० कीनैं, दियैं (सत० १८) अनआयें, आये (सत० ३६), विन देखें (सुजा० ११)।

कभी कभी कुछ असाधारण रूप भी मिल जाते हैं, जैसे मेटी मिटै कौन सो होनी (कृ० १२, ३), हिराय देनी (राज० ३, २४); जीवे तें भई उदास (सुजा० ६)।

एक दो स्थलों पर खड़ी बोली के रूपों का प्रयोग भी मिल जाता है, जैसे होने लगी, खोने लगी (काव्य० २६, १६)।

च—कर्तृवाचक संज्ञा

व्रजभाषा में कर्तृवाचक संज्ञा निम्नलिखित ढँगों से बनती है :—

(१) धातु में-इया लगाकर, जैसे मरिया, हरिया (भक० २८);

(२) धातु में संस्कृत के समान-ई लगाकर, जैसे धारी (भक० २६), विनाशी (राम० १, २३)। सुखदाई (रसखा० २५);

(३) क्रियार्थक संज्ञा में -हारो या -हारी लगाकर, जैसे दिखावनहारी (राज० २, २०);

(४) धातु में -वैया लगाकर, जैसे रखैया (जगद्० १, ५);

(५) क्रियार्थक संज्ञा में -वारो,-वारे या -वारी लगाकर, जैसे देनवारी

(राज० २, २१)। कुछ असाधारण प्रयोग भी मिल जाते हैं, जैसे ज्यारी (कवित्त० ३), दे० ललचोही ; दाता (राज० २, २१)।

छ—प्रेरणार्थक धातु

व्यंजनान्त धातुओं में धातु के मूलरूप में निम्नलिखित प्रत्यये लगती हैं :—

(क) पूर्वकालिक कृदन्त, भूत निश्चयार्थ तथा वर्तमान और भविष्य निश्चयार्थ उत्तम पुरुष एकवचन के रूपों में :—

-आ-, जैसे करायो (सुर० वि० १४) नचाये (रसखा० १२), समुझाऊँ (सुदामा० १७), सुहाति (कवित्त० २८)।

(ख) क्रियार्थक संज्ञा, कर्तृवाचकसंज्ञा तथा भूत संभावनार्थ में :—

-औ- जैसे हठौती (सुदामा० १३),

(ग) वर्तमान तथा भविष्य निश्चयार्थ में उत्तम पुरुष एकवचन के अतिरिक्त अन्य रूपों में :—

-आव-, जैसे कहावै (राम० १, ३५), उपजावत (भाव० १, ११),

-याव-, जैसे ज्यावै (कवित्त० १)।

व्यंजनान्त धातुओं का द्वितीय प्रेरणार्थक रूप बनाने के लिये प्रेरणार्थक रूप में या प्रेरणार्थक का चिह्न जोड़ने के पहले धातु में -व -वा -व- लगता है, जैसे बढ़ावन (राम० १, ३१) छुवायो (रस० १६)।

स्वरान्त धातुओं के प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणार्थक रूप व्यंजनान्त धातुओं के द्वितीय प्रेरणार्थक रूपों के समान होते हैं। अन्तिम स्वर में नीचे लिखे परिवर्तन अवश्य होते हैं :—

(क) -आ, ई, ऊ ह्रस्व हो जाते हैं, जैसे जिवाय (भक्त० ४३), खवाइवे को (जगत्० ६, ४०),

(ख)-ए-ओ परिवर्तित होकर क्रम से-इ-उ हो जाते हैं, जैसे दिवायो (सूर० वि० १४), दिखायो (हित० १५)।

ज—वाच्य

ब्रजभाषा में -य- लगाकर बने हुए संयोगात्मक कर्मवाच्य रूपों का प्रयोग काफी मिलता है, जैसे कहियत हैं ना पै नागर नट (हित० १४) आँखी भरि देखिवे की साध मरियतु है (कवित्त० १५) मान जानियत (रस० ४७), पैरायत गज सो तो इंद्र लोक सुनियै (शिव० ५०), नैनन कों तरसैये कहौं लो (काव्य० २६, २७)।

जानो क्रिया के रूपों की सहायता से बने कर्मवाच्य का प्रयोग अधिक मिलता है, जैसे और गनी नहिं जात (सूर० म० १२), तौ काहू पै मेटी न जात अजानी (सुदामा० १४), वानी जगरानी की उदारता बखानी जाय (राम० १, २), जगोनति को सुख जात कह्यो न (रसरला० ८), एक जीम जम जात न माप्यो (व्रज० २, १८), बरनी न जाति है (सुजा० १७), निरख्यौ गयौ (राज० ४, २४)।

झ—संयुक्त क्रिया

ब्रजभाषा में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग स्वतन्त्रता पूर्वक होता

है। मुख्य क्रिया के रूप के अनुसार वर्गीकृत संयुक्त क्रियाओं के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

(क) क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के साथ, जैसे जन दीन्हे (सूर० म० २), बरसन लगे (गीता० ६, ४), लैबो करा (जगत् २२, ६६), जानि दे (काव्य० १४, ६२);

(ख) भूतकालिक कृदन्त मूल अथवा विकृत रूपों के साथ, जैसे देखे रहियो (सूर० म० २७७, चली जाति (सुजा० १८), मुदयौ चहत (काव्य० १५, ६७) चुग्यौ चाहतु (राज० ८, २४),

(ग) वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ, जैसे चलत पाए (सूर० म० ५), राजने रहत हीं (जगत्० २, ६), खेलत फिरैं (कविता० २७), परति जाति (जगत्० ४, १५);

(घ) पूर्वकालिक कृदन्त के साथ, जैसे धरि दये (कविता० २, ११), निकसि आई (सूर० म० २), घेरि लियौ (सुजा० ३), लपटाइ रही (जगत्० १२, ४६), ले सकै (राज० २, २४)।

५—अव्यय

क—परसर्ग

ब्रजभाषा की संज्ञाओं और सर्वनामों के भिन्न भिन्न कारकों के रूपों में निम्नलिखित मुख्य परसर्ग प्रयुक्त होते हैं :—

कर्म-सम्प्रदान	को, कों , कौ, कौं ; तूँ, कुँ
कर्त्ता	नै, ने, नें
संबंध	को, कों, कौ, के, कें, कै, कैं , की, कि

करण-अपादान   सों, सौं ; तें, ते ; पै, पैं, पर
अधिकरण   में, मैं, मै, माँझ, पे, पर

कर्म-संप्रदान

कर्म तथा संप्रदान कारकों में समान परसर्गों का प्रयोग होता है।

(१) को का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है, जैसे मुख निरखत शशि गयो अंबर को (सूर० य० ६), अडेल ते व्रज को पावधारे (वार्त्ता० १, १), जगतसिंह नरनाह को समुझि सवन को ईस (जगत्० १, ४),

(२) कों का प्रयोग भी पर्याप्त मिलता है, जैसे भजौ व्रजनाथ कों (हित० ६), सो अडेल कों जात हो (वार्त्ता २१, १२), चाकरी कों चले (राज० १५५, १३),

(३) कौ का प्रयोग कम मिलता है, जैसे पाछे एक दिन मथुरा कौ चलन लागे (वार्त्ता० २०, १०), दान जूझ कौ करन सौ (छत्र० १०, ४),

(४) कौं का प्रयोग भी अधिक नहीं हुआ है, जैसे सानै मोहन-मोह कौं (सत० ४७), पेखि परोसिन कौं (रस० ६१), जैसे नदी नारे कौं समुद्र लौं पहुँचावे (राज० ३, २),

(५) कूँ बहुत ही कम प्रयुक्त हुआ है, किन्तु २५२ वार्त्ता में इसका प्रयोग बराबर हुआ है, जैसे नन्ददास जी कूँ मिलन के लिये व्रज में आये (अष्टछाप १००, ४),

(६) कुँ भी बहुत ही कम प्रयुक्त हुआ है, जैसे सो तत्काल प्राग तें अडेल कुँ चले (वार्त्ता० ५१, ८)।

पूर्वी रूप कहँ का प्रयोग भी कुछ मिलता है, जैसे फल पतितन कहँ ऊरध फलंनि (राम० १, २६), सरजा समत्य सिवराज कहँ (शिव० २)।

कर्त्ता

कर्त्ता के लिये संज्ञा का मूल या विकृत रूप बिना किसी परसर्ग के प्रायः प्रयुक्त हुआ है। कुछ स्थलों पर ने के भिन्न भिन्न रूपों के सहित भी संज्ञा प्रयुक्त हुई है :—

(१) ने रूप सब से अधिक प्रयुक्त हुआ है, जैसे महाप्रभून ने (वार्त्ता० २, १२), राजा ने······आपने पुत्र सौंपे (राज० ७, २२),

(२) नै रूप बहुत कम मिलता है, जैसे तिनके घर बास दरिद्र नै कीनो (सुदामा० १५),

(३) नें रूप भी कम प्रयुक्त हुआ है, जैसे मोकों परमेश्वर नें राज्य दीयो है (वार्त्ता० ८, ११), राजा नें ·····कह्यो (राज० ६, ८)।

संबंध

संबंध कारक का प्रयोग विशेषण के समान होता है इसलिये संबंध कारक के रूपों में लिंग के अनुसार भेद होता है। विकृत रूप भी मूलरूप से भिन्न होता है। व्रजभाषा में संबंध कारक के निम्नलिखित भिन्न भिन्न रूप मिलते हैं :—

पुल्लिंग मूलरूप एकवचन को, कौ, कों

पुलिंग मूलरूप बहुवचन तथा विकृतरूप एकवचन और बहुवचन	के, कै, कें, कैं
स्त्रीलिंग दोनो वचनों तथा रूपों में	की

पुलिंग मूलरूप एकवचन के रूपों में (१) को का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है, जैसे घर को द्वार (सूर० म० १), सत्य भजन भगवान को (सुदामा० ८), महाप्रभू को दर्शन (वार्त्ता० २, २१) सबन को ईस (जगत्० १, ४)। अन्य रूपों में (२) कौ का प्रयोग कुछ अधिक हुआ है, जैसे अर्थ कौ अनरथ बानत (भक्त० ४५), सूरदास जी कौ स्थल हुतौ (वार्त्ता० १, १४), भूप नाह कौ वंस (छत्र० २०१)। कुछ स्थलों पर (३) कों का प्रयोग भी मिलता है जैसे श्री गोकुल कों दर्शन करौ (वार्त्ता० ६, ३), सुख कों (भाष० १, ३), होत अर्थ व्यंजकनि कों दस विधि शुभ्र विशेषि (काव्य० ११, ५०)।

सूचना—एक दो स्थलों पर खड़ी बोली का का प्रयोग भी पाया गया है, जैसे कथानि का संग्रह (राज० १, ४)।

पुलिंग मूलरूप बहुवचन तथा विकृतरूप एकवचन और बहुवचन में (१) के का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है, जैसे दमन घर के (सूर० म० ५), जिन के हितू (सुदामा० ७), कारिका के अनुसार (वार्त्ता० ५, १), संकट के कटक (छत्र० १, ११)। अन्यरूपों में (२) कै का प्रयोग कुछ अधिक मिलता है, जैसे जदपि कहूँ के कहूँ रघुन आभरन बनावे (राम० १, ७१), ता कै मयी (छत्र० ३,२), सौतिन कै साल भी (रस० १५)। (३) कें का प्रयोग

कम मिलता है, जैसे बरस एक कें भीतर (वार्त्ता २२, ८), जिन्हें तुमसे मनभावन (रस० ४४)। (४) कैं केवल सतसई में मिलता है, जैसे तू मोहन कैं उर बसी (सत० २५, दे० ७, ४८)

स्त्रीलिंग के दोनों वचनों तथा तथा दोनों रूपों में (१) की का प्रयोग होता है, जैसे बात कहौं तेरे ढोटा की (सूर० म० १४), ता की घरनी (सुदामा० ५), दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका (वार्त्ता० ४, १०), मिलिन्द्रिष्ट प्रतापी की आज्ञा सौं (राज० १, १०)।

कि रूप कुछ स्थलों पर छन्द की आवश्यकता के कारण कर दिया गया है, जैसे प्रीति न वाहु कि कानि बिचारै (हित० २३)। कुछ स्थलों पर लिपा की मिलता है लेकिन उसका उच्चारण कि के समान करना पड़ता है दे० सू० १५।

करण-अपादान

करण-अपादन के लिये अनेक परसर्गों का प्रयोग मिलता है —

(१) सों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है, जैसे सोवत लरिकनि छिरकि मही सों (सूर० म० ४), अंग सों अंग छुवायों कन्हाई (रस० ११), भूषननि सों भूषित करौं कवित्त (शिव० २६), आज्ञा सों (राज० १ १०)। सों के अन्य रूपान्तरों में (२) सौं का प्रयोग कुछ अधिक हुआ है, जैसे सब सौं हित (हित० १२), पिय तिय सौं हँसि कै कहौ (सत० ४३), अभिनव जौबन-जोति सौं (रस० १६)। इस परसर्ग के अन्य रूपान्तर निम्नलिखित हैं किन्तु इनका प्रयोग बहुत कम मिलता है :—

सौ, जैसे हाथ सौ (रसखा० ६),

से, जैसे दुख से दनि (रास० २, ६४),

सें, जैसे तब सें (रसखा ४८),

सुँ, जैसे तियन सुँ न्यारी (राम० १, ८०),

सूँ, २५२ वार्त्ता में बराबर प्रयुक्त हुआ है, जैसे नाम सूँ (अष्ट-छाप १००, २१),

सो, जैसे मो सो (कवित्त० १८)।

(४) तें तथा ते भी बहुत अधिक प्रयुक्त हुए हैं, जैसे ता तें (हित० ५) जिनकी सेवा तें लह्यो (काव्य० १, ३), सहायता तें (राज० २, ५); जाकी धुनि ते (रास० २, ५६), कनक कनक ते सौगुनी (सत० १९२), दिन द्वैक ते (जगत् ८, ३५)।

इस परसर्ग के अन्य रूपान्तर तैं तथा तै मिलते हैं किन्तु इनका प्रयोग कम हुआ है, जैसे अँखिन तैं (रसखा० ३), अर तैं टरत न (सत० ३); तौरे तै (कवित्त० ४)।

अधिकरण

अधिकरण कारक के लिए प्रयुक्त रूपों में सबसे अधिक प्रयोग (१) में का हुआ है, जैसे ब्रज में (सूर० म० १), जग में (कविता० १, २), दान में (शिव० २४), संस्कृत में (राज० १, ५) इस परसर्ग के अन्य रूपों में (२) मैं, (३) मै तथा (४) मॉफ का प्रयोग कुछ अधिक हुआ है, जैसे कानन मैं (रास० १, २६), सरित मैं (शिव० १), सोनों मैं (जगत् ५, १८); छाती मै (कवित्त०

के रूपों के साथ आते हैं लेकिन कुछ उदाहरणों में ये मूल अथवा विकृत रूपों के साथ भी पाये जाते हैं :—

अर्थ, जैसे विद्या साधन के अर्थ (राज० ५, २०),
अर्पन, जैसे सो कृष्णार्पन देतु हौं (राज० ९, १५),
आगे, जैसे या आगे (रास० १, १००), तीन तुक के आगे (वार्ता० २६, १०),
कर, जैसे विद्या कर हीन (राज० ३१, ११),
करि, जैसे निज तरंग करि (रास० १, १२३), मल्ल करि (रास० ६८),
काज, जैसे आपने स्वामी के काज (राज० ७०, २१),
कारन, जैसे माखन के कारन (सूर० म० ७),
ढिग, जैसे मुख ढिंग (रास० २, ४८),
तन, जैसे हरि तन (सूर० य० १५),
तर, जैसे चरन तर (रास० १, ११४),
तर, जैसे वा तरु (रास० १, ३६),
नाईं, जैसे उनमत की नाईं (रास० २, २४),
निकट, जैसे जमुन निकट (रास० २, १८),
निमित्त, जैसे परमारथ के निमित्त (राज० ४८, १२),
पाछें, जैसे तिमन के पाछें (रास० ५, १७),
प्रति, जैसे तुम प्रति (रास० ४, २८),
बिन, जैसे पिय बिन (रास० १, ४),
बिना, जैसे मणि बिना (रास० १, ५६),

बीच, जैसे बन बीच (रास० १, ७२),
मय, जैसे गुन मय (रास० १, ७७),
लये, जैसे हौं तौ अपनें अर्थ के लये दियौ चाहतु हौं (राज० १०, ८),
लयै, जैसे आपनौ कार्य साधवे के लयै (राज० १३०, २४),
लियै, जैसे अपनी सेवा भजन के लिये (वार्त्ता० १०, ५),
सँग, जैसे सखियन सँग (सूर० म० १),
संग, जैसे तिन के संग (रास० १, ३३),
सम, जैसे हरि सम (रास० २, २७),
समेत, जैसे वधू समेत (कविता० २, २४),
सहित, जैसे रति सहित (रास० १, ६८),
साथ, जैसे जार के साथ (राज० ६२, १६),
सी, जैसे ज्योति सी (रास० १, ६२),
से, जैसे तीर से (कवित्त० ४),
हित, जैसे सुत हित हौं न परिश्रम कीन्हौ (छत्र० ६, १६),
हेतु, जैसे पराये हेतु धन प्रान दीजे (राज० १५, १४)।

तक भाव को प्रगट करने के लिये नीचे लिखे रूपों का प्रयोग मिलता है :—

तौंरि, जैसे तीन तुक तौंरि (वार्त्ता० २६, १०),
ताईं, जैसे बहुत दिन ताईं (वार्त्ता० ११, १५),
ताई, जैसे मोह ताई (वार्त्ता० ४०, १),
प्रयंत, जैसे ग्रंत प्रयंत (सूर० य० २),

मर, जैसे जीवतु मर (राज० ३३, ८),
लौं, जैसे द्वारिका लौं (सुदामा० २०), दे० कवित्ता० २, ६, भाष० २, १४, कवित्त० १६।
लौ, जैसे बान लौ (कवित्त० १),
लगि, जैसे कोटि बरस लगि (राम० १, १४),
लों, जैसे अम्बर लों (सूर० प० १२), बहुत बरस लों (वार्त्ता० ३६, १८)।

ग—क्रिया विशेषण

ब्रजभाषा में प्रयुक्त क्रिया विशेषण के रूप संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण अथवा पुराने क्रिया विशेषणों के आधार पर बने हैं। इनमें सर्वनामों के आधार पर बने क्रिया विशेषणों का प्रयोग अधिक मिलता है। नीचे क्रिया विशेषणों की एक सूची दी जाती है।

कालवाचक

अब (सूर० म० २, सत० १८, कवित्त० २, २२) ; तब (सूर० म० १, रास० १, ८२, रसखा० २१), तौ (रास० १, १०८), तद (राज० १२, १५) ; जब (सूर० म० ८, भाष० ६, २६, वार्त्ता० २, ८), ज्यौं (राज० १०, २६), जौ लौं (राज० ११, १४), कद (राज० १३, २४); कब (भाष० ६, २६, रसखा० ३), कैवा (सत० ६६);

नित (सूर० म० १०, रास० १, ३४), आजु (सत० २२, रसखा० ८), अजौं (सत० २१), अजहूँ (सूर० म० १७), पुनि (रास०

१, ११४), पाछे (वार्त्ता० २, १३), पाछें (वार्त्ता० ४, ६), फिर (रास० १, ६६), फिरि (सत० २६), आगे (राज० १२, १३), आगैं (सत० ३८), अगताई (राम० २०) सदा (सुदामा० ४, जगत् १, १), सदाँ (भाव० ३, १०), सदाई (रास० १६) नित (रास० १, २), छिन (सत० ६), छिनु (मन० ३०) छिनकु (सत० १२), पहिले (रास० १८)।

स्थानवाचक

यहाँ (सूर० म० ४), ह्याँ (जगत्० ८, ३४), इत (सूर० य० १६, रास० १, ११६, जगत् १०, ४४), इतै (रसखा० २८, जगत्० ८, ३४); उहाँ (सूर० म० ६, १४), ह्वाँ (जगत्० ८, ३४), उत (सूर० य० १६, सत० १०, रसखा० १६); तहाँ (सुदामा० १७ जगत्० १४, ५६, राज० ३, १०), तहँ (रास० १, १४, सुदामा० १७), तित (भाव० ४, १४); जहाँ (रास० १, २५, जगत्० १४, ५६), जहँ (राम० १, १४), जित (भाव० ४, १४); कहाँ (सूर० म० २, जगत्० १४, ५६, राज० ६, २५), कहाँ लौं (भाव० ४, १४, काव्य० ३, १६), कित (कवित्त० २, १८, सन० ५७), कितै (जगत्० ७, २८), कतहूँ (सूर० म० ८), कहूँ (रास० १, ७२), कहुँ (काव्य० ५, ८);

आगे (सूर० म० २, वार्त्ता० २, २१), सन्मुखैं (सूर० म० ८), अन्त (सूर० म० १२), पाछे (सूर० म० १२), आसपास (वार्त्ता० २, २६), निकट (वार्त्ता० ५, १०), अनु (रास० १, ८४), ढिग (जगत्० ६, ३८)।

विधिवाचक

पैसी (राज० २, १७), पैसी (कवित्त० २, १८), पैसें (राज० २, १८), अस (रास० १, १६), यों (रास० १, ७२, भाव० ३, १०); वैसो (कवित्त० २, १६); तैसें (राज० ३, २), तैसी (रसग्या० ६), तैसिय (रास० १, १०१), तैसिये (रसखा० २२), त्यों (रास० १, ११, सुदामा० ३, जगत० ४, २२); जैसे (सूर० म० ४, रास० १, १६), जैसें (रास० १, ८८, राज० २, १६), जस (रास० १, २६), जिमि (रसखा० १०), जों (रास० १, ७२) ज्यों (रास० १, ८३, जगत० ४, २२, काव्य २, १०), ज्यौं (सत० ४१); कैसे (कवित्त० २, १४), केसे (राज० १४, १७), किमि (सुदामा० १७) केहू (कवित्त० २, २१), क्यों हूँ (रसखा० १६), क्यौं हूँ (सत०);

अंजोरि (सूर० म० १४), मनों (रास० १, ३), मनौ (रास० १, ३६), मनु (सत० ३), मानों (रास० १, १०), मानौं (कवित्त० २, २), जनों (रास० १, ११), ज्नु (रास० १, ६७), बर (सत० ६७), अकेली (काव्य० २, ६), मल (राम० १, ६)।

निषेध वाचक

नहीं (सूर० म० १, रास० १, २, सत० ३६), नहिं (सूर० म० १०, सुदामा० १०), नाहीं (राज० २, २२), नाँहि (सत० ६) नहिन (सूर० म० २), नाहिन (रास० १, ६६), ना (भाव० २, ६), न (सूर० म० १, कवित्त० २, १, सत० ३७), जनि (सूर०

म० १७,) जिन (रास० १, १७, सत० ६६), छिन (भाष० १०, ३२)।

कारण वाचक

क्यौं (सत० ५), क्यो (रास० १, २१), कतक (रास० १, ६८), कत (सूर० म० १६)।

परिमाण वाचक

केतो (सुदामा० २०) कछू (रास० १, २८), कछुक (रास० १, २८), नैक (सत० ७), नेसुक (रसखा० १२), अति (सत० ५६)।

क्रिया विशेषण मूलक वाक्यांश, विशेषतया आवृत्ति मूलक वाक्यांश, भी स्वतंत्रता पूर्वक प्रयुक्त होते हैं, जैसे :—

कालवाचक: बार बार (सूर० म० ३) बेर बेर (कवित्त० २, ११), फिरि फिरि (सूर० म० ६) नित प्रति (सूर० म० ६, सत० ३७), एक समय (वार्त्ता १, १), काहू समें (राज० १, ३), जब जब······तब तब (सत० ६२), छिन छिन (रास० १, ७६), तौ अब (जगत० ६, २८), कैयो बार (सुदामा० २२), घरी घरी (जगत० ७, ३०)।

स्थानवाचक : जित तित (रास० १, २७), कहूँ के कहूँ (रास० १, ७१), जहाँ के तहाँ (रास० १, ७१), चहूँ ओर (सत० ८४)।

विधि वाचक : ज्यौं ज्यौं · त्यौं त्यौं (कवित्त० २, १), ज्यौं ज्यौं ····· त्यौं त्यौं (सत० ४०)।

छन्द की पूर्ति के लिये कभी कभी कुछ वाक्य पूरकों का

प्रयोग भी मिलता है, जैसे जु (सूर० वि० १४, रास० १, १७, सुदामा० २), धौं (रसखा० १२, जगद्० ६, २२)।

५—समुच्चय बोधक

नीचे ऐसे समुच्चय बोधक अव्ययों की एक सूची दी गई है जिनका प्रयोग ब्रजभाषा में अधिक मिलता है। पद्य साहित्य में समुच्चय बोधक अव्ययों की आवश्यकता कम पड़ती है :—

संयोजक : और (सुदामा० ६, वार्त्ता० १, ३), औ (कविता० १, २, जगद्० ५, १८, राज० १, ८), अरु (रसखा० ३, राज० २, १६), फेरि (सूर० म० ६), पुनि (कविता० १, ४);

विभाजक : कै (जगद्० ७, २८, राज० ३, २३), कि (सूर० म० ६, सत० ५६, रसखा० ४), कै .....कै (सुदामा० १२);

विरोध दर्शक : पर (राज० ३, ५), पै (सुदामा० १३);

निमित्त दर्शक : तौ (सुदामा० १४, सत० ७८), तौ पै (सुदामा० २०), तो (सूर० म० ८, सुदामा० १३, रसखा० १);

उद्देश्य दर्शक : जो (रास० १, १०८, रसखा० १), जौ (सुदामा० १३, सत० ९१, राज० ७, १), जो पै (सुदामा० १४);

संकेत दर्शक : जदपि (रास० १, १११, जगद्० ६, ३८);

व्याख्या दर्शक : ता ते (वार्त्ता० ७, ३) ता तें (राज० ५, १४) तासों (राज० ३, ११), क्योंकि (राज० ३, ६);

विषय दर्शक : कि (राज० २, १४), जो (वार्त्ता० २०, १५),

ङ—निश्चय बोधक

ब्रजभाषा में दो प्रकार के निश्चय बोधक रूप पाये जाते हैं, एक केवलार्थक तथा दूसरे समेतार्थक।

समेतार्थक रूपों का प्रयोग बहुत मिलता है। ये संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण आदि अनेक प्रकार के शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। समेतार्थकरूप हू लगाकर बनता है। हू के रूपान्तर हूँ, हुँ, हु, ऊ मिलते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

संज्ञा ; नंद हु ते (सूर० म० ६) सेवकहू (वार्त्ता० १, ७), नर हू (राज० ५, २५), छिन हूँ (वार्त्ता० १४, १८), बानी हूँ (कविता० २, ३), पुन्य हुँ तैं (रसखा० १०) ;

सर्वनाम सो ऊ (सूर० म० ११), ता हू के (सूर० म० ११), आप हू (सुदामा० २१), हम हू (रसखा० १५), का हू पै (सुदामा० १४), हौ हूँ (जगत्० २, ६) ;

विशेषण : और हू पद (वार्त्ता० ६, २०), हत्यारौ हू (राज० १०, ११), थोरे ऊ (राज० १३, २१) ति हूँ (रसखा० ३), तीन हुँ (सुदामा० २४), दस हू दिसि (भाव० ४, १४) ;

क्रिया निकासे हू ते (कवित्त० २, ४), दुराये हू (कवित्त० २, १०), करनौ हू (राज० १२, ४), पाए हूँ (कविता० २, ४) ;

क्रियाविशेषणः कब हू (कवित्त० २, १७, राज० ११, २७), तौ हू (राज० ६, २४), अज हूँ (सूर० म० १७) कब हूँ (कविता०

१, ४, सुदामा० १३) छिन हूँ (रसखा० १०), क्यों हूँ (रसखा० १६);

परसर्ग : मति कौ ऊ (राज० १६, १)।

केवलार्थक रूप ही तथा उसके रूपान्तर हीं, हि, ई, ए, इ लगाकर बनते हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

संज्ञा : समान ही (राज० ७, १४) प्रात ही (राज० ८, १४), जन्म ही तें (कविता० २, ४);

सर्वनाम : सो ई (सूर० म० १) तुम हीं पै (सूर० म० ५), ता ही की (राज० ४, २५), तेरे ए (कवित्त० २, १४), तेरे ई (कवित्त० २, १४), वही (रसखा० १), उन हीं के, उन ही के (रसखा० ५), मेरो इ (रसखा० २८), तुम ही (सुदामा० ६);

विशेषण : सब ही तें (कवित्त० २, ३४), ता ही तिय की (कवित्त० २, ३), ता ही समय (वार्त्ता० ४, १८), एक इ (सूर० म० ११), ऐसो ई (सुदामा० १६);

क्रिया : लिये ही (वार्त्ता० ७, ४), जनवे ही कौ (राज० ५, २), जाते ही (सुदामा० २१), हेरत ही (भाव० ५, १८), देखत ही (जगत्० ६, ३७);

क्रिया विशेषण : अब हीं (सूर० म० १), तब हीं (सूर० म० १०, रसखा० २१, सुदामा० १६), तुरत हि (सूर० म० १३), निकट ही (वार्त्ता० ५, १०), वहाँ हीं (राज० १, १२), भाँति ही भाँति

(जगत्० ३, १३), जहाँ ई" (जगत्० ३, १३) त्यों ही (जगत्० ५, २२),

परसर्ग : कर्म कौ ई (राज० ५, २३)।

६—वाक्य

पद्यात्मक रचना में वाक्यान्तर्गत शब्दों के साधारण क्रम में उलट फेर हो जाता है अतः इस विषय का ठीक अध्ययन गद्य रचनाओं के आधार पर ही हो सकता है। व्रजभाषा में गद्य की कमी नहीं है यद्यपि प्रकाशित साहित्य अवश्य न्यून है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तको की खोज के विवरणों मे (१९००—१९२२) लगभग सौ गद्य या गद्यपद्यात्मक पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। यह अवश्य है कि इनमें से अधिकाश टीका ग्रंथ है और प्रायः अठारहवीं या उन्नीसवीं शताब्दी की रचनायें हैं।

इस व्याकरण के लिखने में गद्य ग्रंथो में से चौरासी वार्त्ता तथा राजनीति इन दो से विशेष सहायता ली गई है अतः प्रस्तुत विषय के विवेचन में इन्हीं गद्य पुस्तकों से उदाहरण दिये जा रहे हैं।

वाक्य में साधारणतया सबसे पहले कर्त्ता, फिर कर्म तथा अन्त में क्रिया रहती है। विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के पहले या बाद को रक्खा जाता है। क्रिया विशेषण क्रिया के पहले आता है। उदाहरण तब श्री आचार्य जी महाप्रभू आप पाक करत

हुते (वार्त्ता० २, ११), कोई चौपड़ खेलत हुते (वार्त्ता० ६, १६), सब गुनीजन मेरो जस गावत हैं (वार्त्ता० ६, ३), परि दूध बहुत तातो हुतो (वार्त्ता० ६५, १३) श्री ठाकुर जी भगवदीय के हृदय में सदा सर्वदा विराजत हैं (वार्त्ता० ६६, ३), हौं मित्र लाभ की कथा कहतु हौं (राज० ८, ३)।

वाक्य के किसी अंग पर ज़ोर देने के लिए शब्दों के साधारण क्रम में उलट फेर कर दिया जाता है :—

कर्ता वाक्य के अन्त में आ सकता है, जैसे सूरदास जी सों कह्यौ देशाधिपति ने (वार्त्ता ० ८, १०);

विशेषण, जो साधारणतया कर्ता के पहले आता है, बाद को आ सकता है, जैसे ब्राह्मन हत्यारो तू मानियै (राज० १०, ११);

कर्म, जो प्रायः कर्ता और क्रिया के बीच में आता है, वाक्य के प्रारंभ या अन्त में आ सकता है, जैसे यह पद ·····सूरदास जी ने गायौ (वार्त्ता० ८, १६),

मोकौं परमेश्वर ने राज दीनों है (वार्त्ता० ४, २),

विद्या देति है नम्रता (राज० २, २३);

साधारणतया क्रिया वाक्य के अन्त में आती है किन्तु यहाँ कर्ता या कर्म के पहले आ सकती है, जैसे विद्या देति है नम्रता (राज० २, २३), कहाँ है यह कंकना (राज०);

क्रिया विशेषण वाक्य में कहीं भी रखा जा सकता है। ज़ोर देने के लिए यह प्रायः वाक्य के प्रारंभ में रख दिया जाता है, जैसे सो कित नेक दिन में गऊघाट आये (वार्त्ता० १, २), सो गऊघाट

ऊपर सूरदास जी कौ स्थल हुतौ (वार्त्ता० १, ६) श्री गंगा जू के तीर एक पत्ता नाम नगर (राज० ४, ५), सूरदास जी ने विचार्यो मन में (वार्त्ता० ६, ८)।

व्रजभाषा में केवल साक्षात् उक्ति के उदाहरण मिलते हैं, जैसे तब श्री आचार्य जी महाप्रभू ने कह्यौ जो जा स्नान करि आउ हम तोको समझावेंगे (वार्त्ता० ४, ६)।

संज्ञा, सर्वनाम, संज्ञा के समान प्रयुक्त विशेषण, भाववाचक संज्ञा अथवा वाक्य या वाक्यांश कर्ता या कर्म के समान प्रयुक्त होता है, जैसे यह पद सूरदास जी ने कह्यौ (वार्त्ता० १६, ६), राजा...... बोल्यो (राज० ७, ६), जो आवे सोई कहे (वार्त्ता० १५, १०) सब श्री नाथ जी को है (वार्त्ता० २२, १); ऐसे संदेह में जैबौ जोग नाहीं (राज० ६, १८), पछतावौ कपूत कौ काम है (राज० १३, ४); काहू को आये पन्द्रह दिन भये हुते (वार्त्ता १६, ५)।

Printed by Ramzan Ali Shah at the National Press, Allahabad